॥ ૨૧૭ ॥

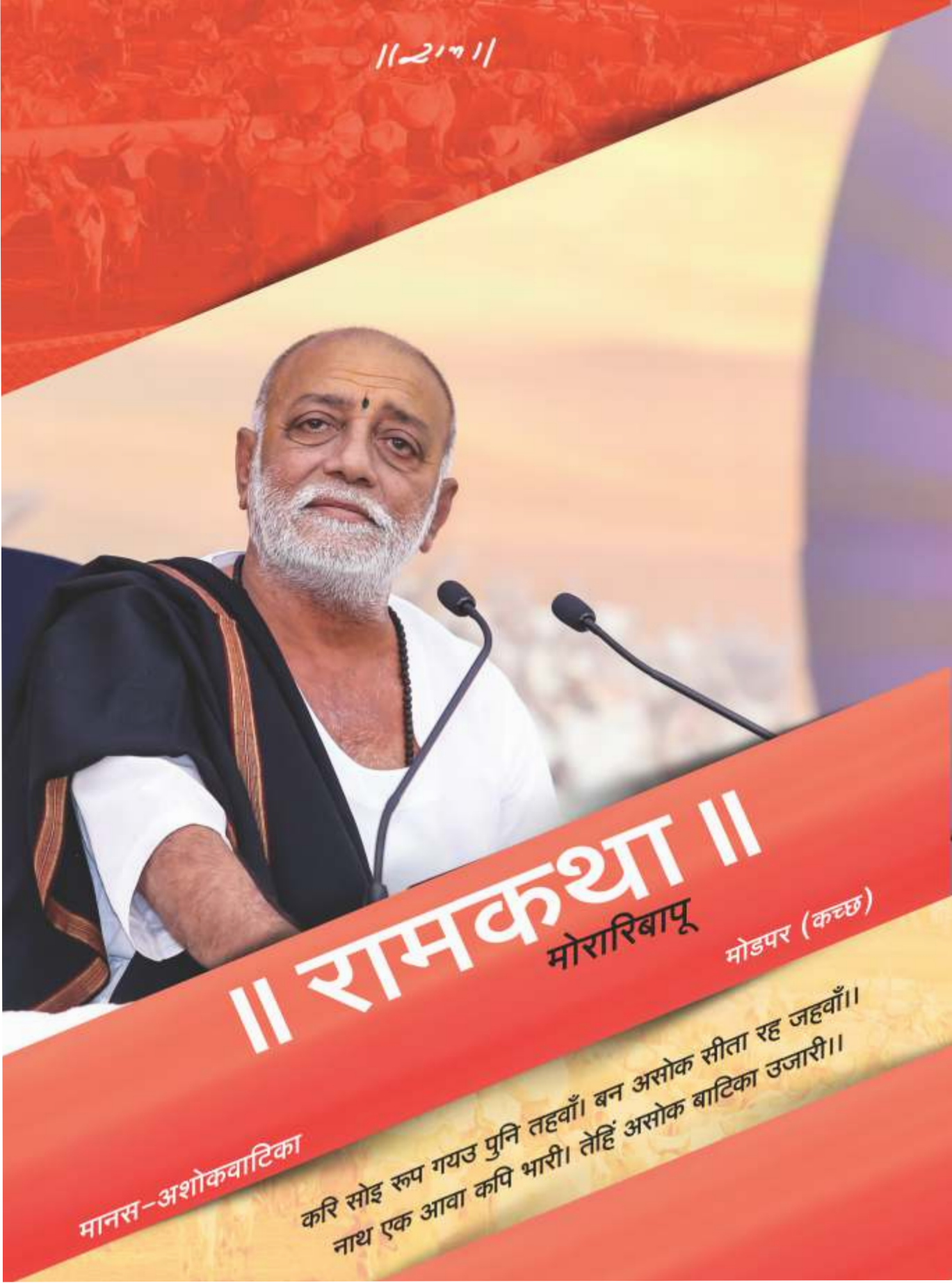

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

मोडपर (कच्छ)

मानस-अशोकवाटिका

करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ।।
नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक बाटिका उजारी।।

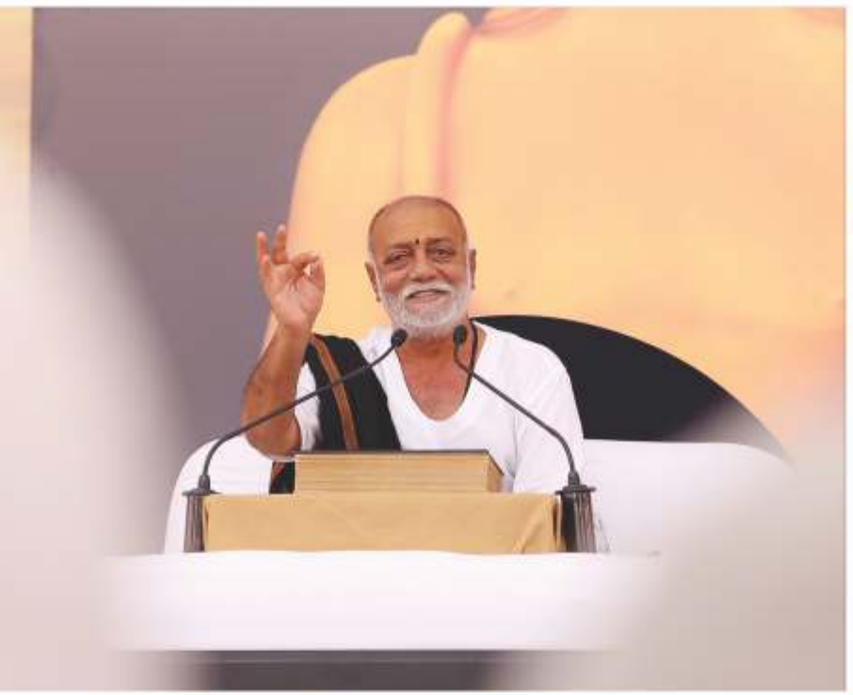

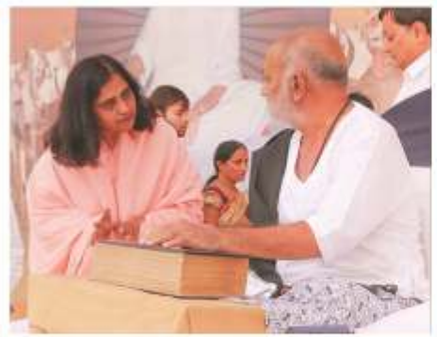

|| **रामकथा** ||
मानस-अशोकवाटिका

मोरारिबापू
मोडपर (कच्छ-गुजरात)
दिनांक : २६-१२-२०१५ से ०३-०१-२०१६
कथा-क्रमांक : ७८६

प्रकाशन :
मार्च, २०१७

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

हिन्दी अनुवाद
प्रो. कमल महेता

रामकथा पुस्तक प्राप्ति सम्पर्क-सूत्र :
ramkathabook@gmail.com
+91 704 534 2969 (only sms)

ग्राफिक्स
स्वर एनिम्स

प्रेम-पियाला

मोरारिबापू की रामकथा 'मानस-अशोकवाटिका' मोडपर (कच्छ) की पूज्यपाद लालबापू की गेबी चेतनाभूमि में दिनांक २६-१२-२०१५ से ३-१-२०१६ दौरान सम्पन्न हुई। अपने जीवन के भीतरी विकास और विश्राम के लिए सहायरूप हो, ऐसी 'सुन्दरकांड' अंतर्गत 'अशोकवाटिका' में घटित कुछ घटनाओं को केन्द्र में रखकर बापू ने इस रामकथा का गान किया। विशेषत: हनुमानजी सीता तक पहुंचने के लिए विभीषण से युक्ति पूछते हैं और विभीषण युक्ति बताते हैं, इस प्रसंग को ध्यान में रखकर बापू ने तात्त्विक दर्शन व्यक्त किया। और सूत्रात्मक निवेदन भी व्यक्त किया कि कोई किसी बुद्धपुरुष से युक्ति जान ले तो जीवन सुंदर बन जाता है।

'अशोकवाटिका' यह केवल लंकास्थित किसी वाटिका का नाम नहीं है पर यह हमारे जीवन का सत्य है, ऐसा कहकर बापू ने 'अशोकवाटिका' की अर्थछाया व्यापक बनाई थी। साथ ही इस द्वन्द्वात्मक सृष्टि के कई द्वन्द्व अशोकवाटिका में है, ऐसा निर्देश भी किया था-'अशोकवाटिका' में क्षय भी है और अक्षय भी है। रावणपुत्र अक्षयकुमार 'अशोकवाटिका' में आया और दूसरे ही पल उसका क्षय भी हुआ। 'अशोकवाटिका' में भय भी है और शांति भी है। राक्षसियां जानकीजी को भय दिखाती है। रावण आकर भय दिखाता है और भगवान शंकराचार्य की वाणी अनुसार सीता स्वयं शांति है। 'अशोकवाटिका' में संतवृत्ति की त्रिजटा भी है। 'अशोकवाटिका' में आक्रमण भी है, रक्षण भी है। समस्या भी है, समाधान भी है। संदेह भी है, भरोसा भी है।

बापू ने ऐसा तात्त्विक निरीक्षण भी व्यक्त किया था कि 'अशोकवाटिका' में एक जति भी है, एक सती भी है। वह अपहृत सती का नाम सीता है। जति का नाम रावण है जो दंडकारण्य की पंचवटी में जति का रूप लेकर आया है। हकीकत में वह संन्यासी या जति नहीं है पर जति का रूप धारण किया है। रावण की अशोकवाटिका में दो संत है। एक सदैव नियत समय पर आता है और थोड़े समय के लिए रामकार्य हेतु प्रवेश करता है। वह संत त्रिजटा है। और माँ जानकी की खोज हेतु रामकार्य करने के लिए आया हुआ एक संत हनुमान है।

बापू ने जनक की 'पुष्पवाटिका' और रावण की 'अशोकवाटिका' की तुलना कर दोनों वाटिका की भावस्थिति का भी निर्देश किया था कि जनक की वाटिका में फूल ही है, फल नहीं है। रावण की 'अशोकवाटिका' में फल ही है, फूल नहीं है। दोनों के केन्द्र में जानकी हैं। दोनों के संदर्भ अलग और रहस्यमय है।

बापू ने 'अशोकवाटिका' और 'पुष्पवाटिका' उपरांत स्वर्ग की 'अमृतवाटिका', पाताल की 'विषवाटिका' और आध्यात्मिक क्षेत्र की 'नभवाटिका' का परिचय भी दिया था। इस कथा में 'मानस' संलग्न विभिन्न वाटिकाओं का विशेष दर्शन व्यासपीठ से व्यक्त हुआ था। और कथा के अंत में बापू ने अपने अंत:करण में पुष्पवाटिका निर्मित करने की सबको अपील की थी।

– नीतिन वडगामा

किसी बुद्धपुरुष से जुगति जान ले तो फिर जीवन सुंदर बन जाता है

करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ।।
नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक बाटिका उजारी।।

बाप, फिर से एक बार कच्छ की धरा पर रामकथा गाने का अवसर प्राप्त हुआ। कथा के माध्यम से हम इतने पूजनीय संतों के दर्शन कर सके। उनके मुखर-मौन आशीर्वाद हमनें प्राप्त किए इसका मुझे आनंद है। सभी पूज्य चरणों में नमन कर, पूज्यपाद लालबापू की गेबी चेतना को प्रणाम कर, उस परंपरा में समाविष्ट सभी गद्दीओं के स्थान पर आसीन पूज्य महंतश्रीगण, बापू के आश्रित सेवकगण, मेरे श्रोता भाई-बहन, आप सबको व्यासपीठ पर से मेरे प्रणाम।

महादेवबापू का पुरुषार्थ और प्रतीक्षा, उनकी गुरुनिष्ठा, उनका मनोरथ कि इस भूमि पर एक कथा हो। वह घडी आई और आज से हम कथा का आरंभ कर रहे हैं। मेरे मन में कोई वस्तु निश्चित नहीं थी कि मैं किस विषय पर बोलूं? महादेवबापू ने मेरे निवास की सुंदर व्यवस्था की तो मुझे लगा कि मैं 'सुन्दरकांड' में से ही बोलूं। जहां मेरा निवास है उसका नाम बापू ने 'कैलासवाडी' रखा है। कैलासवाले की कृपा से ही हम 'सुन्दरकांड' में प्रवेश कर रहे हैं। नहीं तो हमें शास्त्रों और धर्मग्रंथों का परिचय कब होता? मेरे मन में आया कि मैं 'सुन्दरकांड' में से कुछ लूं। आपके साथ नौ दिनों तक बातें करूं। तय हुआ कि 'मानस-अशोकवाटिका' कथा का मुख्य विषय रखूं। 'सुन्दरकांड' का एक प्रसंग। अशोकवाटिका में घटित घटनाएं। जो आपके और मेरे जीवन में कहीं-कहीं आंतरिक विकास और विश्राम में सहायभूत हो सके ऐसा जिस ढंग से समझ में आए, प्रेरणा हो ये सब मैं आपके साथ बातें करूंगा। क्रमश: कथा के साथ-साथ केन्द्र में 'मानस-अशोकवाटिका' होगी। तुलसी 'श' की जगह 'स' और 'व' की जगह 'ब' प्रयुक्त करते हैं। यह तुलसी की 'ग्राम्यगिरा' है। मूल शब्द तो 'अशोकवाटिका' है। हम गुजराती में रखेंगे 'मानस-अशोकवाटिका।' मैंने इसीलिए दो पंक्तियां 'सुन्दरकांड' से ली है। थोडी भूमिका आपके साथ संवाद के रूप में करूं कि हनुमानजी लंका में गए सीता को खोजने सभी जगह घूमते हैं। कहीं भी सीता के दर्शन नहीं होते। फिर विभीषण के घर-आंगन गए। कुछ विशेष देखा तो लगा कि यहां एक सज्जन पुरुष, साधुपुरुष निवास करते हैं। हनुमानजी तर्क-वितर्क करते हैं। विभीषण मिलते हैं। हनुमानजी पूछत हैं, 'मैं सीता के पास कैसे पहुंचूं, युक्ति बताईए।' मेरी दृष्टि से यह कथा का दिव्य प्रसंग है। विभीषण युक्ति बताते हैं। तुलसी ने 'जुगति' शब्द प्रयोग किया है। मैंने शायद कहीं पर यह चर्चा की है। अभी तो याद आता नहीं पर आएगा। कुछ निश्चित नहीं होता! वसीम बरेलवी साहब का एक शे'र है -

लगता तो बेखबर-सा हूं लेकिन खबर में हूं।
तेरी नज़र में हूं तो सब की नज़र में हूं।

खबर नहीं क्या बोलूंगा पर संकेत मिलते हैं कि हनुमान की दृष्टि में है तो फिर बोलता ही रहूंगा, बातें करता ही रहूंगा। खास तो मुझे आपसे बातें करनी है। इसमें कौन सी जुगति है यह एक असुर कहता है। साहब, आश्रम में रहकर साधु जीवन सरल है पर-

लंका निसिचर निकट निवासा।
इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।।

चारों और मांसाहार, आतंक, फ़रेब, बेवफ़ाई, मद्यपान, भ्रष्टता! यह सब जो भी दिखाया है इसके बीच एक मनुष्य हरि की आराधना करता है, सज्जन बनकर जीता है। तुलसी ने विभीषण के लिए 'सज्जन', 'साधु' और 'संत' शब्द का प्रयोग किया है। ये क्रमशः आंतरिक विकास के नाम है। हम न हो फिर भी सब सज्जन कहते हैं। संबोधन में भी कहते हैं। 'सज्जनों' और 'सन्नारियों' ऐसा बोलते हैं। साधुपन और संतपन इसके बाद का स्टेज है या नहीं क्या पता? पर ये आंतरिक भूमिकाएं हैं। कोई बुद्धपुरुष जुगति बताए तो ही सार्थकता हो। जुगति बतानेवाला सज्जन, साधु, संत है। यह यात्रा किसीके मार्गदर्शन से ही हो सकती है। बुद्ध ऐसा कहे कि 'अप्प दीपो भव।' तू ही तेरा दीप हो जा। वह स्टेज अलग है। अपने जैसे आश्रित के लिए कोई चाहिए। जो हमें जुगति बताए। फिर उनकी जाति-पाति मत देखिए। पता-ठिकाना मत देखिए। उनका कुल-मूल, दूध-बुध सब भूल जाय। वहां दूध नहीं, अमृत होता है। दोनों में काफ़ी फ़र्क है। यह जुगति अमृत है। इसमें किसी की जरूरत पडेगी। हनुमानजी तो परमगुरु है। शंकर के अवतार है। शंकर तो त्रिभुवन गुरु है। जुगति सीखनी है क्योंकि मुजे भक्ति, शांति, सीता तक पहुंचना है। हनुमानजी कहते है, मुजे जानकी के दर्शन करने हैं। कुछ बताईए। तुलसी की पंक्ति है-

जुगति विभीषन सकल सुनाई।
चलेउ पवनसुत बिदा कराई।।
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ।
बन असोक सीता रह जहवाँ।।

वहां 'जुगति' और 'सकल' शब्द प्रयुक्त किये गये हैं। गुरुकृपा से जो समझ मिली है वही बताता हूं। विभीषण ने हनुमान को भक्ति, शांति, परमशक्ति तक पहुंचने क्या-क्या युक्ति बताई है। मेरी स्मृति का सहारा लेकर बताउंगा। ऐसी जुगति हमें किसीसे जाननी होगी। यह जानने के लिए चार वस्तु की जरूरत पड़ेगी। एक, जब रावण ने विभीषण को लात लगाई तब वे राम तक पहुंचे। कोई धक्का मारे तभी राम तक पहुंचते हैं। हम यूं ही लंका छोड़ नहीं सकते। विभीषण राम तक पहुंचा तब लिखा है-

सचिव संग लै नभ पथ गयऊ।

जो सीताजी की जुगति बताता है वह अपने मंत्रियों संग पहुंचा। इसका अर्थ यह हुआ कि जिसके पास जुगति है, रहस्य है, भक्ति कैसे प्राप्त करे ऐसे रहस्य कोई अधिकारी पूछे तब बताया जाय तो ही फल मिलेगा। वह बतानेवाला राम तक पहुंचेगा। राम तक पहुंचने के लिए अधिकारी मिले तभी खोलना। न मिले तब तक न खोले। हमारे यहां प्राचीन भजन है-

जोई जोईने वहोरीए जात्युं,
बीबां विण पडे नहीं भात्युं...

कोई ऐसा मिल जाय तब उनको पूछना। और योग्य पूछनेवाला मिले तो युक्ति बतानी चाहिए। पर हमें कोई चाहिए। मेरा सूर ये है कि हमें कोई चाहिए।

मैं आसमां में बहुत देर रह नहीं सकता।
मगर ये बात जमीं को कह नहीं सकता।
सहारा लेना ही पड़ता है मुझको भी दरिया का,
क्योंकि मैं एक कतरा हूं तन्हा बह नहीं सकता।

मैं एक बूंद हुं। अकेली बह नहीं सकती। किसी प्रवाह में घुलना होगा। मुझे कोई प्रवाहमान, कोई साधक, कोई सफल खोजी हो उसका संग करना पड़ेगा। इर्ष्या या स्पर्धा से कुछ नहीं मिलेगा। हमें कबूलना होगा कि 'मैं एक कतरा हूं तन्हा बह नहीं सकता।' ये वसीम बरेलवीसाहब की पंक्तियां हैं।

तो मेरे भाई-बहन, हमें किसीसे जानना होगा कि लंका में पहुंचने के बाद सीता तक कैसे पहुंचे? सीधी-सादी भाषा में गुरुकृपा से जो भी सुझेगा, आपको कहूंगा। कथा का केन्द्रीय विषय 'मानस-अशोकवाटिका' रखेंगे। जो इस यात्रा में चार वस्तु साथ में रखेंगे कोई हर्ज़ नहीं होगा। पर मैं कोई वचन नहीं देता पर जो थोड़ा-बहुत अनुभव हुआ है वही कहता हूं। स्पष्टता करता हूं। क्योंकि कई लोग कहेंगे कि हमें तो बडी-बडी आपत्ति होती है! अरे, तुम्हें तो आपत्ति के सिवा क्या होता है? यह अर्थजगत की आपत्ति की बात नहीं है। यह कामजगत की भी बात नहीं है। यह परममार्ग के विघ्न की बात है। उसे फिर आपत्ति नहीं होती।

सचिव संग लै नभ पथ गयऊ।

विभीषण अपने मंत्रियों को साथ लेकर गया। आठ कौन से मंत्री होंगे? 'रामायण' में तो नहीं लिखा है। ये आठ मंत्री थे ऐसा तो मैं कह रहा हूं। मंत्रियों के नाम नहीं लिखे। आठ मंत्री थे। मेरे दिमाग में क्यों आठ का आंकडा आया होगा यह खबर नहीं! कहीं लिखा होगा तो सहारा मिलेगा। पर यह मानुष परम के पास जाने मंत्रियों को साथ ले गया। ऐसे चार मंत्री मैंने खोज निकाले हैं। एक मंत्री का नाम सुमंत है। वो सारथि भी है और मंत्री भी है। ऐसा मंत्री मिल जाय तो पहुंच जाय। सुमंत्र का अर्थ व्यासपीठ करती है कि कोई कल्याणकारी मंत्र किसी बुद्धपुरुष से मिल जाय यह सबसे बड़ा मंत्री है। फिर वो राम, शिव, अल्लाह, गेबी, जिसस चाहे कोई भी हो। मुझे कोई आपत्ति नहीं है। पर मंत्र कल्याणकारी होना चाहिए, मैला नहीं। विद्या के साथ 'मैली' शब्द क्यों जोडते हैं? यह वस्तु जगत में है? मैली तो अविद्या होती है, विद्या नहीं हो सकती है। थोड़े दिन पहले एक बहन मेरे पास आई। शायद मायाभाई बैठे थे। मैंने पूछा, 'बहन, कुछ काम है क्या?' कहा, 'बताना है।' मैंने कहा, 'बहन तू गलत जगह पर आई है!' सुमंत्र चाहे 'राम' जैसे दो अक्षरों का क्यों न हो या तो किसी भी तुम्हारे गुरु ने आपको जो मंत्र दिया है वो सुमंत्ररूपी सचिव साथ में हो तो राम तक पहुंचने में समाज के कोई भी सुग्रीव विघ्न डालेगा पर रोक नहीं पाएगा। कोई न कोई हनुमान हमारा हाथ पकड़ेगा और हमें राम तक ले जाएगा। जीवन में ऐसा सुमंत्र किसी महापुरुष से लेना है जिन्होंने इस मंत्र को सिद्ध भी किया हो। उस सिद्धांत के साथ मंत्र द्वारा 'भयउ सुद्ध करि ऊलटा जापू।' वाल्मीकिजी की तरह जिन्हें पूरे अंतःकरण को शुद्ध कर डाला हो ऐसा कोई मंत्र हमारा सचिव बने। 'रामायण' में एक दूसरे मंत्री का नाम है-

सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू।
बिपिन सुहावन पावन देसू।।

दूसरा मंत्री वैराग्य है। त्यागने का समय आए तो अग्रज बनना। जमाखोरी में पीछे रहना। शेष रहे वही मेरा प्रसाद। त्यागने का आए तो जिन्होंने क्रांति की होगी उनको पहुंचने में देरी नहीं होगी। शक्य हो तो विस्तार नहीं करना। नहीं तो मुश्किल होगी यदि गुरु की भट्ठी में पक न गए हो। जो पक गए हैं उन्हें आपत्ति नहीं होगी। वो तो मख्खन में से बाल की तरह निकल जाते हैं। वैराग्यरूपी मंत्री हमें राम तक पहुंचाए। तीसरा मंत्री कोई शास्त्र है। चाहे कोई भी धर्म हो। भगवान जिसस का नाताल समय चल रहा है। इसका भी शास्त्र है। पयंगम्बरसाहब का शास्त्र है। अपने पास वेद है। शीख और जैन भाईयों के अपने शास्त्र हैं। 'रामचरित मानस' तक हमनें गति की है। हमारे पास जो शास्त्र हो तो वो शास्त्ररूपी एक मंत्री भी होना चाहिए। गुरुवाणी का कोई शास्त्र बना हो। जैसे कबीरसाहब की वाणी का शास्त्र। या तो किसी भी शास्त्ररूपी एक मंत्री अपने साथ होना चाहिए। उनका मार्गदर्शन जरूरी है। आखिरी स्टेज में तो शास्त्र भी छूट जाते हैं। लेकिन वो तो हमारा सामर्थ्य नहीं। उसकी व्याख्याएं हो, बातें हो। मैं राम को छोड़ सकूं पर रामकथा को न छोड़ सकूं। हमारा ऐरा तप नहीं है कि राम आ सके। यदि राम आकर कहे, रामकथा छोड़, बहुत हो गया, अब मैं प्रसन्न हूं। धनुषबाण धारण कर आए और ऐसा कहे तो मैं दूर से प्रणाम कर कहूं कि मैं आपको छोड़ दूंगा पर रामकथा नहीं छोड़ सकता। मैंने रामकथा से पाया है। और सहजोबाई ने गाया है। सपोर्ट में सहजोबाई है-

राम तजो मैं गुरु ना बिसारुं।

सहजोबाई ने कहा, मैं राम को छोडूंगी। और 'रामायण' क्या है?

सद्गुरु ग्यान बिराग जोग के।

तुलसीदास 'रामायण' को सद्गुरु मानते हैं। उसे कैसे छोड़े? राम को छोड़ सकते हैं पर शास्त्र को नहीं। शास्त्ररूपी कोई गुरु हमारा सचिव बने यह आवश्यक अंग है।

वैराग्य हमारा मंत्री बने। जिसे लेकर विभीषण राम तक पहुंचते हैं। ऐसे कोई सहायक तत्त्व साथ में होना चाहिए। यह तभी संभव होता है जब हम चाहे कैसे भी परिसर में रहे पर अपना भजन बरकरार रहना चाहिए। विभीषण की महिमा यह है कि वह ऐसी प्रतिकूल जगह बैठा है फिर भी वह हरि को भजता है। और वो हनुमानजी को युक्ति बता सकता है। हनुमानजी ने युक्ति जानी और सीताजी के पास पहुंचे। पूरे 'रामचरित मानस' का भाष्य 'सुन्दरकांड' है। वेदों का भाष्य उपनिषद है और उपनिषद का भाष्य 'श्रीमद् भगवद् गीता' है। 'भगवद्गीता' के सभी योग-प्रयोग 'रामचरित मानस' में है। यह निर्णय मेरा नहीं, पंडित रामकिंकरजी महाराज का है। मेरी समझ अनुसार 'रामचरित मानस' का भाष्य 'सुन्दरकांड' है। 'सुन्दरकांड' का भाष्य 'हनुमानचालीसा' है। मैं यहां तक पहुंचा हूं। विभीषण के आंगन में 'नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ।' मैंने अपनी कुटिया में प्रवेश किया। चारों और कितने सारे तुलसी हैं! श्याम तुलसी, लाल तुलसी। तुलसी बहुत है। मुझे तो तुलसी के बीच में ही रहना है, यार! मुझे तो चारों और तुलसी ही चाहिए। बाकी हम तो जंतु हैं! चार कथाओ से मैं स्वयं को जंतु कहता हूं। जंतु को भी सहारा मिल जाय तो मेरु डिगे पर जंतु न डिगे। सहारा चाहिए।

साहब, किसी बुद्धपुरुष से जान लो तो फिर जीवन सुंदर बन जाय। मेरा आशिष बता रहा था फिलहाल विश्व में जितनी शांति है ऐसी किसी काल में नहीं थी। ऐसा रीडिंग सयाने आदमियों का है। ये आध्यात्मिक नहीं है, वैज्ञानिक है, बौद्धिक है। ऐसा रीडिंग मुझे पसंद है। फिर भी हम कहते हैं, आज अशांति बहुत है। दिखती भी है। पर इसका कारण सयानों ने जो खोजा यह मुझे पसंद है। मैं इस पर सोच रहा हूं कि अभी जो दिखाई देता है इसका एक ही कारण है कि अभी अपने पास जानकारी देनेवाले इतने साधक हैं कि छोटी घटना भी घटे तो अगले पल ही पूरी दुनिया को पता चल जाय। फिर वही बात लगातार मीडिया में घूमती रहे इसीलिए हमें सभी अशांत लगे! बाकी मेरे तुलसी ने कहा है, 'कलजुग सम जुग आन नाहीं', पहले घटना बनती थी तो दो-दो महिने तक पता नहीं चलता था। सब शांत ही लगे। यह सब जानकर दु:खी हुए हैं! तब तुलसी सच लगे कि उन्हों ने जो कहा पांच सौ साल पहले कि कलियुग जैसा कोई काल नहीं है। साहब, अमी क्या हुआ है कि पहले के युगों का विचार करते हैं तो लगता है कि दो समाज लड़ रहे थे। दो समाज में पूरी दुनिया विभक्त थी। एक देव और दूसरा दानव। सुर और असुर के बीच संघर्ष था। साहब, सतजुग से ले। आपको और कोई समाज दिखाई नहीं देगा। मेघाणी ने पत्र में गांधीजी को लिखा कि-

सुर-असुरना आ नवयुगी उधधि-वलोणे,
शी छे गतागम रत्नना कामीजनोने?
तुं विना, शंभु कोण पीशे झेर दोणे!
हैया लगी गळवा गरल झट जाओ रे, बापु!
ओ सौम्य-रौद्र! कराल-कोमल! जाओ रे, बापु!
छेल्लो कटोरो झेरनो आ: पी जजो, बापु!
सागर पीनारा, अंजलि नव ढोळजो, बापु!

दो समाज ही लड़ रहे थे। फिर ऐसा समय आया कि दो परिवार लडते थे। कौरव-पांडवों के बीच कितने परिवार खत्म हो गए! 'रामायण'काल में देखें तो अयोध्या और लंका के बीच संघर्ष था। दशाननवृत्ति और दाशरथीवृत्ति के बीच संघर्ष था। अभी दो समाज के बीच ज्यादा युद्ध नहीं है। कोई उत्तेजित करे और दो के बीच लड़ाई हो

जाए यह अलग बात है। फिलहाल व्यक्ति-व्यक्ति के बीच संघर्ष है। वो मुजसे आगे क्यों निकल गया? यह मुझसे ज्यादा क्यों सीख गया? ऐसी लड़ाईयां शुरू हुई है। यदि हमें ऐसे सरस समय में तृप्ति चाहिए तो अभी सुंदर अवसर है। बारह साल के बाद इतना सुंदर आयोजन किया है।

बाप, मेरी व्यासपीठ आपकी प्रतीक्षा के फल स्वरूप आ सकी है इसका मुझे आनंद है। कथा निमित्त नौ दिन साथ रहेंगे। 'मानस' के प्रसंग बताता रहूंगा। 'मानस-अशोकवाटिका' की सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवाद के रूप में करेंगे। प्रसंग भी लेंगे। प्रथम दिन कथा का यह मंगलाचरण है। अपने यहां मंगल उच्चारण को मंगलाचरण नहीं कहा। मंगल उच्चारण तो हम करते ही है। पढ़ा-लिखा आदमी ज्यादा अच्छा उच्चारण करता है। जीवन में श्रीगणेश मंगल आचरण है।

सात सोपान का यह परमशास्त्र है। प्रथम सोपान के प्रारंभ में मंगलाचरण रूप सात मंत्र लिखें। प्रथम मंत्र में बानी और विनायक की वंदना की।

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।

शंकर-पार्वती की वंदना की। गुरु की वंदना की। सीतारामजी की वंदना की। हनुमानजी और वाल्मीकिजी का स्मरण किया। तुलसी ने संकल्प किया कि 'स्वान्त: सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा।' मैं इस रघुनाथ की गाथा को स्वान्त: सुख हेतु कहने जा रहा हूं। यह उनका प्रथम संकल्प। दूसरा संकल्प, 'भाषाबद्ध करबि मैं सोई।' मुझे बोध हो अत: इसे भाषाबद्ध करूंगा। तीसरा संकल्प तुलसी का है, 'निज गिरा पावनि करन कारन...' मेरी वाणी को पवित्र करने के लिए मैं यह कथा कहूंगा। इन तीन संकल्पों के साथ तुलसी शास्त्र रचना का आरंभ करते हैं। सात संस्कृत श्लोकों में मंगलाचरण किया। अपनी निजी भाषा में बात की है। लोकबोली में बात की है। श्लोक को लोक में उतारना था अत: सोरठा, दोहा और मुख्यत: चौपाईयों का आधार लिया। और यह शास्त्र लोकबोली में कहा। पांच सोरठें लिखें। आप सब जानते हैं कि गणेशजी का स्मरण किया। माँ भवानी को याद किया। भगवान शंकर का स्मरण किया। सूर्य भगवान की स्तुति की। भगवान विष्णु की स्तुति की। तुलसी ने भगवान शंकर का मत स्थापित किया। हम सनातन धर्म के अनुयायी हैं। वैदिक परंपरा के संतान है। शंकराचार्य भगवान ऐसा कह गए हैं कि पांच देवों का स्मरण करना है। गणेश, शिव, पार्वती, विष्णु भगवान और सूर्य। इन पंचदेवों की पूजा की स्थापना जगद्गुरु शंकराचार्य नें बताई है। शंकराचार्य अद्वैती है। तुलसीदास विशिष्टाद्वैती है। परंतु 'सभी सयाने एक मत।' शास्त्रारंभ करते हैं तो शांकर मत से करते हैं। मुझे यह बहुत पसंद है। तुलसी का यह सेतुबंधीय विचार है। पांच सोरठें में पांच देव की बात लिखी। ये पंचदेव जिनमें समाहित है ऐसी गुरुवंदना से रामकथा का आरंभ होता है -

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर।।

मेरी व्यासपीठ आपसे कितनी बार बात कर चुकी है। फिर से याद दिलाउं कि तुलसी ने गुरुवंदना की। व्यासपीठ की दृष्टि से आदमी गुरुनिष्ठ हो जाय तो गौरीपूजा भी हो जाय। गणेशपूजा भी हो जाय। भगवान शंकर का अभिषेक भी हो जाय। विष्णु भगवान का पुरुषसुक्त का पाठ भी हो जाय। सूर्यनमस्कार भी हो जाय। गुरु में सब कुछ आ जाय। अपने यहां कहा गया है कि गुरु से बढ़कर परमतत्त्व है ही नहीं। 'नास्ति तत्त्वं गुरु...' ये मेरे शब्द नहीं है। शास्त्र के शब्द है। हां, गुरु गुरु होना चाहिए। गुरु को यह देखना है कि आश्रित चिंतातुर न हो। उन्होंने तो भरोसा रखा। बात खतम हो गई। यह गुरु को ध्यान में रखना है। नहीं तो चेला ही पहुंच जाय! यह हमारे लक्ष्मणबापा, अमरमाँ का भजन है, 'मैं तो सिद्ध रे जाणीने तमने सेविया रे' गाता है। मैं निजरूप गाऊं तब ऐसा गुनगुनाउं 'मैं तो शुद्ध रे जाणीने तमने सेविया।' 'हे गुरु, मैंने तेरी उपासना शुद्ध हृदय से की है। तेरा तू जाने। हम तुम्हारी परीक्षा नहीं ले सकते। हम तुम्हारी शरण में साफ़ दिल लेकर आए हैं। साहब, मैं

आपको एक ही बात कहूं कि ट्रेईन्ड कुत्तों को बास आती है कि कौन गुनहगोर है? पशु को पता होता है कि सामने से आता हुआ गुनहगार है या शुद्ध हृदय का है? तो क्या गुरु को पता नहीं चलता होगा कि कौन से हेतु के साथ आता है? पता चल ही जाता है कि इरादा क्या है। गुरु को भजना हो तो कोई हेतु न रखे। उस दिन गुरु अनराधार बरसते हैं। वो समुद्र देने को तैयार है और हम चमकी लेकर खडे हैं! ऐसी काव्यपंक्ति है।

बाप! गुरु गंगा है, गणेश है, सूर्य है, विष्णु है, महेश्वर है। तुलसी ने गुरु आश्रय से रामकथा का आरंभ किया है। जीवन समाप्त हो इससे पहले किसी को ढूंढ ले, जो जाग्रत और ज्ञानी हो। केवल ज्ञानी पंडित होता है। थोड़ी-सी भीड होने से रोता है! 'रामायण' का शब्द है 'प्रभुप्रसाद' और 'गुरुप्रसाद।' जो कुछ भी हो वह गुरुप्रसाद से होता है। आदमी कहां से कहां पहुंचेगा? पर गुरुप्रसाद कुछ होता है। जिसकी आंख गुरु की चरणधूलि से शुद्ध हो वो किसकी निंदा करेंगे? मैं स्पष्ट मानता हूं कि हम सब तरह से ठीक हो पर किसी की निंदा करेंगे तो हमारी आंख शुद्ध नहीं है। गुरु की रज से आंख मांजी हो तो परनिंदा कर ही नहीं सकते। तुलसी को समस्त सृष्टि वंदन योग्य लगी। तुलसी को कोई पराया दिखा ही नहीं। पूरा जगत वंदन योग्य लगा। उन्होंने कह दिया, 'सीयाराममय सब जग जानी।' समस्त सृष्टि मेरे लिए सीताराममय है। उन्होंने पूरे उपनिषद का विचार स्थापित किया चौपाई में कि गुरुरज से ऐसा हो सकता है। हमें सब राममय लगे, सब अपने लगे। यों सबकी वंदना करते-करते तुलसीदासजी कौशल्यादि माताओं की, दशरथजी की वंदना करते हैं। जनकराजा और चार भाईयों की वंदना करते हैं। उसी क्रम में तुलसीजी हनुमानजी महाराज की वंदना करते हैं-

महाबीर बिनवउँ हनुमाना।
राम जासु जस आप बखाना।।
प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।

हनुमानजी शंकर के अवतार है। लोकदेवता है। कोई भी गांव हो, मंदिर हो या न हो पर कहीं भी हनुमानजी तो बैठे ही है। हनुमानजी लोकदेवता है। हनुमंततत्त्व परमतत्त्व है। समझ में आये तो आश्रय में जाईए। तुलसी ने किया है। उसके वचन पर भरोसा हो तो हनुमंततत्त्व अतिशय आवश्यक है।

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल अमंगल मूल-निकंदन।।
पवनतनय संतन-हितकारी।
हृदय बिराजत अवध-बिहारी।।

गुरु की इतनी बात के बाद हनुमानजी की बात की। क्यों? किसी में श्रद्धा न रहे तो हनुमानजी को गुरु बनाईए। भाईयों और बहनों, हम मंत्र-तंत्र नहीं जानते। पर हनुमानजी के आश्रय में जाना काफी है। रोज हमारी नाभि से नासिका तक फलांगते हैं पवन या सांस के रूप मैं। वे प्राणतत्त्व है। जीवन तत्त्व है। प्रथम दिन की कथा मैं हंमेशा हनुमानजी की वंदना तक पहुंचाता हूं। आज की कथा को विराम देता हूं।

'रामायण'काल में देखें तो उसमें लंका और अयोध्या के बीच ही संघर्ष हुआ है। दशाननवृत्ति और दाशरथीवृत्ति के बीच यह संघर्ष था। अभी बहुधा दो समाज के बीच युद्ध नहीं है। किसी के उत्तेजित करने पर संघर्ष हो जाय यह अलग बात है। अभी केवल व्यक्ति-व्यक्ति के बीच संघर्ष है कि वो मुझसे क्यों आगे निकल गया? या मुझसे क्यों ज्यादा सीख गया? पांच साल में उस आदमी ने इतनी सारी कमाई कैसे कर ली? यह सारी लड़ाई शुरू हुई है!

'अशोकवाटिका' मेरे और आपके जीवन का एक सत्य है

'मानस-अशोकवाटिका', ये कथा का-सत्संग का मुख्य विचार है। इसकी ओर चर्चा हम करेंगे। उसके पहले मेरे पास आज बहुत से प्रश्न है, उन प्रश्नों को संक्षिप्त में लेता हूं। एक तो विदेश से आए हुए एक श्रोता ने पूछा है कि जय सीयाराम बापू, वोट इझ गेबी? ये गेबी क्या है? इसका स्पष्ट उत्तर तो जिन्होंने गेबी गुरु का अनुभव किया हो वो आश्रित ही दे सकता है। दूसरे तो सभी भाष्य कहलायेंगे। किन्तु जिसने सही में अनुभव किया हो वही इसके बारे में कह सकता है। लालबापू भी कह सकते हैं या लालबापू की चेतना में जिसको पूरी तरह निष्ठा होगी वो आश्रित ही कह सकता है। परंतु बाप, जब आपने पूछा है तब कहता हूं, गेब का एक अर्थ होता है कि जो समझ न आए वो। जिसको उपनिषद की भाषा में, 'मानस' की भाषा में अलख कहते हैं। जिसको पहचान न सके, जिसको जान ना सके। जो समझ आ जाए तो फिर उसे कहा न जाए। कितने तो जान गये हो पर कह न सके। इस तरह रहस्यपूर्णता, जिसको विज्ञानकाल में मिस्ट्री कहते हैं। जिसको समझना मुश्किल है ऐसा कोई परमतत्त्व, ऐसे किसी गुरुतत्त्व को लालबापू गेबी गुरु कहते हैं। बाकी और ज्यादा तो गेबी गुरु ही कह सकते हैं।

गेब का एक अर्थ स्पेस या अवकाश होता है। मैं खुश हूं कि मेरा व्यासपीठ का एक श्रोता जो नासा में, अंतरिक्षयान में काम करता है, उस लड़के ने 'रामचरित मानस', 'भगवद्गीता' और छोटे-से हनुमानजी को अवकाश में भेजा। और वो तीनों अवकाशभ्रमण करके वापस आए! सब मिलकर-घूमकर वापस अच्छा ही बन गया। गेब में चक्कर मारकर आए फिर भी ठीक-ठाक रह सिखे उसका नाम गेबी। नहीं तो अज्ञात में कूद के कोई भी जिंदा नहीं रहा! साहब! जो बातों का समझना मुश्किल हो, कुछ भी समझ न पाए उसे गेब कहते हैं में जो रहस्यपूर्ण है। इस बात को अनेक अर्थों में ले सकते हैं जो अनलिखा है; बानी और आंखें देख सकती हैं किन्तु बिना जिह्वा के बोल न सके ऐसी अकथ कहानी का नाम गेबतत्त्व हो सकता है। ऐसा मेरा व्यक्तिगत मानना है। एक प्रश्न खत्म हुआ।

दूसरा प्रश्न नहीं है, किन्तु ये पंकज, इसकी कविता-सूरावली फिर से फूट पड़ी है! हमारे तखतदानजी ने जो कविता लिखी वो बहुत प्रसिद्ध हुई -

मोजमां रे'वुं, मोजमां रे'वुं, मोजमां रे'वुं रे,
अगम अगोचर अलखधणीनी खोजमां रे'वुं रे ...
- दान अलगारी

बाद में कोई बात निकली तो कथा में कहा कि भाई, साधक को होश में रहना चाहिए। इसी कथन में पंकज को मुखडा मिला तो उसने कविता लिख दी। अच्छा उतरा है दिमाग में। और अच्छा हो तो मुझे पसंद आये। मुझे सबकुछ अच्छा लगे। मुझे किसीने पूछा कि क्या बुरा हो वो अच्छा न लगे? लेकिन साहब! कुछ भी बुरा दिखता ही नहीं, फिर बात ही क्या है! साहब, जन्मघूटीं में ही बुरा नहीं आया तो फिर क्या करे! मुझे बहुत से लोग ऐसा कहते हैं कि बापू, आप उनको इतना अधिक सम्मान देते हैं। किन्तु वो आप को ऐसा दिखता है, लेकिन मुझे तो ऐसा दिखता ही नहीं, उसका मैं क्या करूं? इसीलिए ये सुंदर पंक्तियां लिखी है उसने -

भानमां रे'वुं, भानमां रे'वुं, भानमां रे'वुं रे,
सुगम सगोचर सद्गुरुनी शानमां रे'वुं रे.

एक भाई ने मुझे 'कच्छमां मोरारिबापू, माधापरथी मोड पर', ऐसा एक बहुत लंबा पत्र लिखा है। नाम भी लिखा है। भुज से ये पत्र है। सभी प्रश्न बहुत ही अच्छे लिखे हैं। वो सब पढूं तो लम्बा हो जाए। तो प्रश्न है कि बापू, राम का इतना हठाग्रह, दुराग्रह किस लिए कि उनके पिता दशरथ प्राणत्याग कर रहे हैं फिर भी राम वापस नहीं आए? उन्होंने कहा कि पिता को वचन दिया है कि वन में जाना है। रामकथा में मुझे कोई एक चौपाई तो ऐसी बताओ कि दशरथ ने मुख से बोला हो कि राम तुझे वन में जाना है, ये मेरा आदेश है। कैकेयी ने भी आदेश नहीं दिया। हां, राम ने पूछा कि माता, मेरे पिताजी इतने दु:खी क्यों है? तो कहा कि दो वचन मांगे हैं। और कैकेयी ने भी आदेश नहीं दिया। हे राम, आपको वन में जाना है और शायद वन में जाना था तो राम को जाना था, किन्तु दशरथ ने कहा कि यदि सीता भी वापस आ गई होती तो मेरे प्राण बच जाते। तो क्या सीताजी को वापस नहीं आ जाना चाहिए? दशरथजी के प्राण जा रहे हैं, फिर भी सीताजी कहते हैं कि मैं तो पति के पदचिह्नों पे ही चलूंगी, ये कहां की पति सेवा? राम को तो जैसे वन में जाने की जल्दी थी। ये तो जैसे मन की बात हो गई, जो पसंद है वही वैद ने बोल दिया! तो राम ने ऐसी जल्दबाजी और जिद्द क्यों की? ये तो एक प्रश्न है। ऐसे तो उसने कई पूछे है! मैं पढूंगा। बाप, मैं प्रसन्न हुआ। कथा सुनकर ऐसा सुंदर सोचा जा रहा है। मैं उसका स्वागत करता हूं।

बाप, एक प्रश्न का तो उत्तर दे भी दूं। साबित भी हो जायेगा कि दशरथ राजा ने वन में जाने का आदेश नहीं दिया। वचन दिये थे। और किसी ने भी आदेश के रूप में तो नहीं कहा कि तुम वन में जाओ, इवन कैकेयी माँ ने भी ऐसा नहीं कहा। जिसने ये प्रश्न पूछे है, उस भाई का नाम महेशभाई है। वो भुज के है। भगवान ने ऐसी जिद्द क्यों की? क्यों रुके नहीं? ये एक बात हुई। दूसरी बात सीताजी को इतना समझाया फिर भी वो क्यों नहीं रुके? दोनों पक्ष बहुत अच्छे हैं। सीताजी को समझाने का कार्य तीन लोगों ने किया। माँ कौशल्याजी ने सीताजी को समझाया कि बेटा, तू वन में ना जाना। दशरथजी ने समझाया है। रामजी ने स्वयं सीताजी को समझाया है।

'रामायण' में तीन वाटिका है। तीनों के केन्द्र में मेरी माँ जानकी है। जनक की पुष्पवाटिका के केन्द्र में सीता है। रावण की 'अशोकवाटिका' के केन्द्र में भी सीता है। और सीता वन में न जा सके उसीलिए कौशल्याजी एक तीसरी वाटिका का नाम देते हैं, 'बिषबाटिका'; ये तीसरी वाटिका 'रामायण' में खड़ी हुई जिसका नाम 'विषवाटिका' है -

विष वाटिकाँ कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि।।

ज़हर से भरी हुई बाटिका में क्या संजीवनी शोभित होगी? सीता स्वयं संजीवनी है। हनुमानजी को द्रोणाचल पर्वत जाने की तनिक भी जरूरत नहीं थी। उससे पहले ही वो संजीवनी को मिल चुके हैं। 'सुभग संजीवनि मूरि।' तुलसी का कहना है कि ये एक तीसरी वाटिका जो रहस्यपूर्ण है। इस तरह हो सकता था, किन्तु हनुमानजी क्यों गए वहां लेने? क्योंकि प्रभु की इच्छा थी कि इतनी दूर से संजीवनी लाए। प्रथम तो यह कि नजदीक की संजीवनी मूल्यवान नहीं दिखती। जैसे अमरिका से दवाई मंगा दी! दूर से औषधि मंगाने के ही विचार आते हैं! वैसे भी घर के गुरु को कौन समझ पाया है? मैं बहुत विश्वासपूर्ण कह रहा हूं 'रामायण' के गायक के रूप में और मेरी ओर भी बहुत जिम्मेवारियां है। अशोकवाटिका का एक पत्ता भी ऐसा असरदार है कि उसका रस पिला दिया होता तो भी लक्ष्मणजी खड़े हो गए होते। किन्तु वो तो लौकिक कारण है कि नजदीक का वैद समझ नहीं आता। घर का व्यक्ति बच्चों के कान न बिंध पाए, दूसरों से ही मदद ली जाएं बिंधने की! एक तो ये बात नहीं समझ आई हो। दूसरा, भगवान राम का संकल्प था। परमात्मा के अवतार का जो प्रिप्लान होता है, जो योजना होती है साहब, उसको समझना मुश्किल है। भगवान राम की योजना थी कि प्रत्येक राक्षसों को निर्वाण प्राप्ति हो। निर्वाण के साथ-साथ वो जन्मों के फेरों से भी मुक्त हो जाए। और दूसरी बात ये सोची जाए कि

उनके निर्वाण के साथ ही इस जगत में से दुष्कृत्यों का भी नाश हो और अधर्म की ग्लानि ना हो आदि-आदि। जानकी के आने के बाद अशोकवाटिका में जानकी के कारण ही संजीवनी है इस बात की खबर यदि हनुमानजी वैद्य को कह दे और राजवैद को इस का पता चल जाए कि यहां संजीवनी है और राजवैद जाकर रावण को कह दे कि संजीवनी है तो जितने राक्षस मर जाए उन सभी को एक-एक पत्ता लेकर उसका चूरण बना के खिला दे तो सभी राक्षस जिंदा हो जाए! और निर्वाण रुक जाए! ये मेरे राघव की मुझे गर्भित योजना दिख रही है। ये सभी मास्टर स्ट्रोक है।

संजीवनी को तुलसी ने सुभग कही है। सुभग यानी सुंदर। जानकी सुंदर है। और भक्ति जैसी संजीवनी जगत में कोई नहीं। शांति जैसी संजीवनी और गुणातीत शक्ति जैसी संजीवनी भी दूसरी कोई नहीं है। मेरी माँ जानकी 'रामायण' में तीन रूप में है। मुझे आपके साथ मूल बात तो ये करनी है कि शक्ति के रूप और भक्ति के रूप में रही जो सीता 'अशोकवाटिका' में है और साथ ही जगद्गुरु शंकराचार्य के मत से शांति के रूप में जो सीता 'अशोकवाटिका' में है वहां तक, ये तीनों तत्त्व तक पहुंचने की युक्तियां क्या है? भक्ति तक पहुंचने की नौ युक्तियां है। और भक्ति भी नौ तरह की है। विभीषण ने नौ भक्ति तक पहुंचने की नौ युक्तियां बताई है। सीता शांति का रूप है तो उस तक पहुंचने की पांच युक्ति बताई, और सीता आदिशक्ति, परमशक्ति होने के कारण परमशक्ति तक पहुंचने की चार युक्ति है। यानी सब मिलाकर अठारह युक्ति की चर्चा आपके साथ करनी है। भक्ति की नौ युक्ति की कुछ बातें आपके साथ करूं उससे पहले 'अशोकवाटिका' की विशेष भूमिका को समझना जरूरी है।

बाप, 'अशोकवाटिका' एक ऐसी जगह है, जो लंका में स्थित एक वाटिका का नाम मात्र नहीं है, वो मेरे और आपके जीवन का एक सत्य है। कौन से अर्थ में सत्य है उसके थोड़े लक्षण इस तरह है। जीवन में सब मिश्रित है। ये सृष्टि द्वंद्वात्मक है। इससे सब जुड़ा हुआ है, यूनाइटेड है। यहां अगर सुख है तो दु:ख भी है। यहां सम्मान है तो अपमान भी है। यहां निंदा है तो प्रशंसा भी है। साधु है तो असाधु भी है।

तो जीवन का सत्य है वाटिका। 'रामचरित मानस' में 'बाग', 'वन', 'अरण्य' और 'वाटिका' जैसे शब्द है उस सबके अर्थभेद है। गुरुमुखी विद्या इसमें काम लगती है। बाप! गुरुबोध बहुत जरूरी है, इसको हंमेशा याद रखना चाहिए। और मैं आपको भी कहता हूं कि आप पे किसी गुरु की कृपा हुई हो तो उसे भुनाना नहीं है। सच्चे गुरु के शिष्य कभी भी भुनाते नहीं है साहब! गुरुकृपा तो फिक्स डिपोझिट है। हम पर उसकी कृपा हो तो उसे भुनाना नहीं चाहिए। और जिस दिन आश्रित गुरु की कृपा को भुनाता है, उसी दिन ग्लानि होती है। अधर्म की कोई ताकत नहीं कि वो धर्म की ग्लानि कर सके। अंधेरे की कोई ताकत नहीं कि वो सूरज को उगता रोक सके। तथाकथित धर्म ही धर्म की ग्लानि करते हैं, जो तत्त्वत: धर्म नहीं है! 'धर्म' कितना बड़ा पवित्र शब्द है! साधुता को भुनना नहीं है।

बानुं लजवाय नहीं हो, माळा छे डोकमां ...

जो मनुष्य इस तरह गुरुनिष्ठा का निर्वाह करेगा। राज कौशिक का शे'र है -

मुझे जितनी जरूरत थी वो उतना हो गया मेरा।
फिर उसके बाद वो किसका वो अल्लाह जाने या वो जाने।

मेरे गुरु ने मुझे मंत्र दे दिया और सत्य समझा दिया तथा परस्पर प्रेम का मंत्र देते हुए करुणा की बात की फिर मुझे इर्ष्या करने की क्या जरूरत है? कौन चिंता करे? और अपनी जरूरत से वो ज्यादा मिले तो क्या ऐसी हमारी हैसियत है? हमारी जठराग्नि बहुत छोटी है। हम पचा नहीं सकते। साधु के पास तो सभी स्विच होती है साहब! साधना को नहीं भुनना है। गुरु ने दी हुई विद्या को भी भुनना नहीं चाहिए। वो अधिक मिलती है बाप! समंदर किसी को नहीं बुलाता, किन्तु सभी नदियां उसके पास जाती है।

तो, जीवन का जो सत्य 'अशोकवाटिका' है। यह जीवन मिश्रित है। द्वंद्व से भरा है। हमारे हिस्से का ईश्वर, हमको मिल जाए इससे ज्यादा हमारा पचा पाना

मुश्किल है। मेरा जहां निवास हो तो सबसे पहले मैं झूले पर बैठुं। मेरा यज्ञकुंड देख लूं। बाद में अंदर प्रवेश करता हूं। अंदर जाके सभी स्विच को देख लूं कि उसमें पंखे की कौन-सी है। नाइटलेम्प की कौन-सी है। गरमपानी की कौन-सी है? मेरे अकेलेपन की बात नहीं है। हम सबको जो रूम में, हम दो-तीन दिन रुकनेवाले हो उसमें पंखे की स्विच कहां है उसकी खबर हमें हो जाए। और पंखे की हवा ज्यादा हो तो हम कम कर सके। यों गुरुआश्रित हो उसे क्रोध आए किन्तु उसे खबर होनी चाहिए कि कितना करना है। हमारे स्विच की हमको खबर होनी चाहिए। विवेक की स्विच हमारे पास होनी चाहिए कि कितना रखना चाहिए। 'सम्यक्' जो बुद्ध का शब्द है। सब सम्यक् होना चाहिए।

'अशोकवाटिका' में आप देखो। 'अशोकवाटिका' में क्षय भी है और अक्षय भी है। अक्षयकुमार रावण का बेटा 'अशोकवाटिका' में आया और दूसरी ही मिनट पे उसका क्षय भी आया। ये क्षय और अक्षय दोनों 'अशोकवाटिका' में मिश्रित है। 'अशोकवाटिका' में भय भी है और शांति भी है। वो राक्षसी जानकी को भयभीत कर रही है, रावण भी आकर भय दिखाता है। और शंकराचार्य भगवान की वाणी में सीताजी स्वयं शांति है। 'अशोकवाटिका' में आसुरीवृत्ति की राक्षसी भी है और उसी 'अशोकवाटिका' में संतवृत्ति की त्रिजटा भी है। ये सभी ही एकत्र है। 'अशोकवाटिका' में आक्रमण भी है और रक्षण भी है। और भी कहे तो समस्या है तो समाधान भी है। संदेह है तो भरोसा भी है। सीता को संदेह हुआ, ये बंदर बात करता है! ऐसा बंदर मुझे रावण के पाश से मुक्त कर सके? और हनुमानुजी ने जब अपना मूल रूप दिखाया तब सीता का विश्वास भी है। ये वाटिका यानी लंका में स्थित रावण का बागमात्र नहीं है, जीवन का सत्य है। कितने द्वंद्व वहां एकत्र हुए है! वहां पहुंच ने की भक्ति भी है, युक्ति भी है।

तो, जीवन के इस 'अशोकवाटिका' के सत्य को मैं और आप सत्संग द्वारा आत्मसात् करें। 'अशोकवाटिका' का आरंभ तो 'तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ।' वहां से 'अशोकवाटिका' के संकेत शुरू हो जाते हैं। 'रामायण' में जानकी का अपहरण करके रावण निकला, 'हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ।' जानकी को बहुत प्रलोभन दिये, भय दिखाया। सभी तरह से जब रावण थक गया तब 'अशोकवाटिका' में अशोक नाम के वृक्ष के नीचे यत्न करके सीता को बिठा दिया कि आप इधर रहो। 'बन असोक सीता रह जहवाँ।' कोई मनुष्य ऐसा थोड़े ही कहेगा कि मैं जेल में रहता हूं। क्योंकि उसे मालूम है कि जेल रहने की जगह नहीं है, मजबूरी है। यहां तुलसी ने कौन-सा शब्द प्रयुक्त किया है?

बन असोक सीता रह जहवाँ।

सीता अशोकवाटिका में है ऐसा नहीं, सीता अशोकवाटिका में रहती हैं। भक्ति तो हर जगह में रहती है। उसे रावण और राम की नाराजगी नहीं होती। उसे अस्पृश्यता नहीं होती। वह तो विदेहनगर की पुष्पवाटिका में भी जानकी हो सकती है और ये देहनगर रावण का, इसमें भी सीता हो। क्योंकि सीता स्वयं वैदेही है, इसलिए कहीं भी हो सकती है। तीर्थ में जाए तो ही भक्ति मिले ऐसा नहीं है। कभी गरीब के झोंपडे पे जाके खड़े हो जाए तो भी भक्ति के दर्शन हो जाए साहब! तो, 'अशोकवाटिका' केवल प्रसंग नहीं, केवल एक भूमि का टुकडा नहीं, केवल लंका में स्थित वस्तु नहीं है। 'अशोकवाटिका' हमारे जीवन का सत्य है। उसमें सभी समस्याएं भी है, उसके समाधान भी है। तो बाप, ऐसी 'अशोकवाटिका' में विभीषण पूर्व पंक्ति में हनुमानजी को युक्ति दिखाते हैं।

तो पहले नौ प्रकार की भक्ति की नौ युक्तियां। अब इसमें 'रामायण' की भक्ति लूं कि 'भागवत' की वो द्विधा है।

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा ।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।।

ये 'रामायण' में वर्णित नौ प्रकार की भक्ति भगवान राम ने शबरी के सामने 'अरण्यकांड' में कही थी। आप जानते ही हो परंतु 'भागवत' की भक्ति -

श्रवणं, कीर्तनं, विष्णोः स्मरणं, पादसेवनम् ।
अर्चनं, वन्दनं, दास्यं, सख्यं, आत्मनिवेदनम् ।।

महापुराण का आश्रय ले तो श्रवण, पहली भक्ति। कब श्रवण हो? कोई संत का संग कर ले तब। असंत की संगत करे तो श्रवण न हो, सुनना पड़ता है इसका और दुनिया दोनों का कि आपने उनकी बातें सुनी? आप उनके साथ बैठे? सुनने और श्रवण करने में बहुत फ़र्क है। हम सुनते तो हैं, लेकिन श्रवण कहां करते हैं? ये कथा सुनने मिले तो साहब, आप किसी दिन ऐसा मत मानिए, 'रामचरित मानस' का आधार ले के कह रहा हूं कि आप ये कथा सुनो, श्रवण करो तो आपको इसका वापस कोई फल मिले। क्योंकि तुलसीदासजी ने 'मानस' में ऐसा कह दिया है कि सत्संग फल है, वो साधन नहीं है। ये कभी भी ना भूले। सत्संग परिणाम है। मेरा तुलसी हस्ताक्षर करते हैं कि दूसरे सब साधन है। इसका परिणाम सत्संग है। और ये फल है। इसके द्वारा एक ही चीज बाकी रहती है और वो है हरिनाम का रस प्राप्त करने की। बाद में रस ही बाकी रहता है। यानी हम जो ये मान ले कि हम सत्संग करे तो हमारी फेक्टरी सही से चलेगी! न को! सत्संग करे तो हमें मोक्ष मिले, इसकी खबर नहीं है। हमें स्वर्ग मिले, ये देखा नहीं है। जाना भी नहीं है। क्या सत्संग करने से हम नरक से बच जायेंगे? ऐसी हमको कोई भी खबर नहीं है। सत्संग माने तुलसीदास के लेख की तरह परिणाम है।

तो, श्रवणभक्ति को प्रथम भक्ति कहा है। श्रवणभक्ति की युक्ति क्या? श्रवण की युक्ति है कान में कुंडल। ये कनकट्टा, ये कान को बींधने की बात ये केवल लौकिक वस्तु नहीं है साहब! उनमें से निकलता है कोई आदेश। हमारे कुंडल समाज के इन्द्र ले गए हैं! जैसे 'महाभारत' के कर्ण के कुंडल बनावटीपन से ले लिए गए थे। कुंडल यानी मुझे स्पष्ट लगता है, मैं मेरी जिम्मेदारी से कहता हूं कि 'महाभारत' का युद्ध हुआ साहब, तभी ये कर्ण के कुंडल को इस से पहले की घटना में शामिल न किया होता तो 'गीता' अर्जुन ने सुनी उससे ज्यादा कर्ण ने सुन ली होती। किन्तु कृष्ण को खबर थी कि ये सूर्य का बेटा है और इसके कान में 'गीता' जाएगी, ये युक्ति श्रवणभक्ति में मिल जाए तो फिर अर्जुन की विजय होते होते रह जाए, लेकिन कर्ण बुद्धत्व को प्राप्त लेगा। बाप, श्रवणभक्ति की प्रथम युक्ति है कोई इन्द्र, समाज के कोई विष्टि क्षेत्र के लोग ये श्रवण का विज्ञान छिन ना ले। आपको कोई ये नहीं कहता हो कि अभी कथा में क्या रखा है यार! ये आपके कुंडल ले लेने की वृत्ति है। ये कवच-कुंडल सिर्फ़ 'महाभारत' की घटना नहीं है। हमारा श्रवण विज्ञान ना छिने ये जरूरी है, क्योंकि श्रवण करने से विवेक प्राप्त होगा।

बिनु सतसंग बिबेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।

बराबर श्रवण किया होगा तो विद्या-विवेक आयेगा। जिसके पास विद्या हो, जो गुरु को सुनकर प्राप्त हुई हो उसे विवेक का उपयोग सही समय पर करना चाहिए। जिसके पास कुंडल है, श्रवणभक्ति की युक्ति भी उसी को प्राप्त होती है। वो उसे शरण तक पहुंचा देता है। आत्म निवेदन तक पहुंचाता है। शरणागत बना देता है। यानी प्रथम भक्ति श्रवण है उसकी युक्ति है, अपना श्रवणविज्ञान कोई छिन ना ले। ये श्रवण यानी मुझे ही सुनो ये नहीं कहता, इतना ध्यान में रखना। जब कोई दूसरा बोलता हो तब मैं सुनता हूं, वो भी इतनी ही रस के साथ क्योंकि मुझे खबर है कि वो भक्ति है। किसी का प्रवचन सुनूं तो वह मेरे लिए श्रवणभक्ति है। डायरे सुनना भी मेरी श्रवणभक्ति ही है। जिसमें से मुझे और आपको कुछ मिलता है, हमको कुछ प्राप्त होता है। किन्तु समाज के इन्द्र हमारे ये कुंडल छिन ना ले उसका बहुत ध्यान रखना। कुंडल छिन ले यानी क्या साहब? हम सुनकर उससे सच में कोई सत्य निकालना चाहे तो नहीं निकाल सकते और उसने जो कहा वो मान लिया इसका अर्थ ये है कि कुंडल गए। एक मनुष्य दूसरे के कान में कचरा डाल दे कि फलां-फलां भाई ऐसे है और आप सत्य मान लो तब समझ लेना कि सत्य नहीं था फिर भी मान लिया इसका अर्थ ये है कि आपका कुंडल इन्द्र ले गया! और इन्द्र को देव कहा जाता है, और देव अमर कहलाते हैं। श्रवण

यानी कथा ही नहीं। किसी की दो अच्छी बात सुनो तो वो भी श्रवणभक्ति ही है।

कीर्तनरूप भक्ति की युक्ति है देश-काल का स्मरण। कलियुग में केवल हरिनाम संकीर्तन की ही महिमा गायी है तो उसकी युक्ति मेरी व्यासपीठ को समझ में आती है, देश-काल का स्मरण। कीर्तन भक्ति की युक्ति ले के हनुमानजी अशोकवाटिका में गए तब हाथ में करताल लेकर कीर्तन करने नहीं लगे! वो सोचते हैं कि मुझे अब कौन-से समय प्रकट होना है? मैं राम की कथा कब कहूं? इस प्रकार सारा विवेक हनुमानजी ने दिखाया क्योंकि वे ये युक्ति विभीषण के पास से ले गए थे। उनका समय था तब उन्होंने कथा कीर्तन किया, उसके पहले नहीं। उन्होंने अवसर देखा। जब जानकी को अत्यंत दु:खी देखा तब रामनाम की मुद्रिका फेंकी और जब जानकीजी ने प्रश्न किया कि तुम कौन हो? उस समय 'रामचंद्र गुन बरनै लागा।' रामचंद्र के गुण गाने लगे। तो कीर्तन की ये युक्ति है। तीसरी भक्ति 'विष्णु: स्मरणं', प्रभु का स्मरण। स्मरणभक्ति तीसरी भक्ति है। किन्तु स्मरणभक्ति की युक्ति है और वो इतनी ही कि स्मरण भीतरी होना चाहिए, दिल से होना चाहिए; सिर्फ़ होठों पे नहीं! स्मरण दिल का स्वभाव है। हृदय की प्रवृत्ति है स्मरण। थोड़े समय ये बुद्धि की प्रकृति है लेकिन आखरी पडाव तो दिल का है। और ध्यान देना, तीसरी युक्ति, आगे की युक्ति से विरुद्ध में जाती है। कीर्तन की युक्ति है, देश-काल की सभानता। तभी स्मरण की जो युक्ति है उसमें देश-काल का होश नहीं रहता। वो तो अमरिका में भी याद आए, अमरेली में भी याद आए। सुबह-शाम याद आए। स्मरण के लिए देश-काल के बंधनों की विभीषण ने बताई हुई युक्ति में मना है। क्या रोने का कोई टाइमटेबल होता है? शायद स्मरण नजदीक और दूर के अंतर में नहीं रहता। सत्य तो ये हैं कि ये मार्ग के लोगों के लिए दूर होता है तब ज्यादा स्मरण होता है। जब निकट होता है तो स्मरण की मात्रा कम होती है। स्मरण अचानक से होता है और स्मरणभक्ति में गुरुकृपा से मुझे ऐसा लगता है कि हम उसको याद नहीं कर सकते। उसने हमें कहीं याद किया है इसलिए हम उसको याद करते हैं। ये टेलीपेथी वहां से शुरू हो जाती है। हम से नहीं होती। परमतत्त्व हमको याद करता है तब हमारी आंख भर आती है।

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई।
जब तब सुमिरन भजन न होई।।

श्री हनुमानजी का वक्तव्य है कि जगत में बड़े से बड़ी विपत्ति यह है कि हरि, तेरा स्मरण हम चूक जाए, तेरा भजन हम भूल जाए। और ये स्मरण भक्ति मेरी व्यक्तिगत दृष्टि से जहां ज्यादा से ज्यादा प्रगट हुई है वो स्थल का नाम वृंदावन है या तो चित्रकूट। मेरे 'मानस'कार कहते हैं कि जब-जब भगवान राम अयोध्या का स्मरण करते हैं तब नेत्रों में आंसू भर आते हैं। ये स्मरणभक्ति है। ऐसी नौ भक्ति की अलग-अलग नौ युक्ति है। आगे की युक्ति की चर्चा हम कल करेंगे। थोड़ा-सा कथा का क्रम ले लूं।

कल हनुमानजी की वंदना तक हमने कथा का क्रम संभाला। फिर रामसखाओं की वंदना की, एक अर्थ में परिचय दिया। फिर एक बार कहूं, जो ये परचे की बात है न ये 'परचा' शब्द अच्छा है, लेकिन मूल में तो 'परिचय' शब्द होगा कि हम को उनका परिचय हुआ। बाद में हमने चमत्कार और परचे के रूप में लिया होगा। परचा यानी रूबरू, चेहरे से चेहरा, जिसको साक्षात्कार कहते हैं उसी परिचय का नाम परचा है। तो, रामसखाओं का परिचय कराने के बाद सीता-रामजी की वंदना की। ये दोनों तत्त्वत: अभिन्न है। और बाद में बहुत ही बड़ा प्रकरण तुलसीदासजी ने लिखा और वो है परमात्मा के नाम की महिमा। परमतत्त्व के नाम की वंदना। परमात्मा के नाम की महिमा दिखाई। नाम ओमकार स्वरूप है। नाम प्रणव का पर्याय है। स्रोत है। भगवान शिव परमात्मा के नाम को महामंत्र के दर्जे से जपते हैं, इसीलिए काशी में कोई भी मनुष्य की मौत होती है तभी मुक्ति का भंडारा खोल के बैठे हैं कि ईश्वर नाम के प्रताप से तेरी मुक्ति हो जायेगी। तुम कैसे भी हो।

नाम अद्‌भुत है। कोई भेद नहीं है कि आप राम का ही नाम लो। रामनाम, शिवनाम, माँ दुर्गा का नाम, बुद्ध, महावीर, खुदा, अल्लाह किसी का भी नाम हो। भारत के संतों ने कोई भी भेद किया नहीं है। भेद की दीवारों को उसने तोड़ी है। तुलसी कहते है कि उनका इष्ट राम है। राम की महिमा बहुत ही विलक्षण है, वो सब सही है। लेकिन तुलसी किसी पे भी थोपते नहीं कि आप 'राम' ही बोलो। कोई भी नाम जिस नाम में आपका रस हो, जिस नाम में आपकी स्वभावगत रुचि हो, वैसा कोई भी नाम। ये कलियुग में हम कोई यज्ञ नहीं कर सकते, ध्यान नहीं कर सकते। करे तो बहुत अच्छा लेकिन हमारी हैसियत नहीं है। घंटों तक हम कहां पूजा और अर्चना कर सकते है? हरिनाम लेना बस। हरिनाम, ऐसा कोई भी नाम जो हम पसंद हो, उसका आश्रय करना चाहिए। नाम की महिमा चारों युग में है किन्तु तुलसी कहते हैं, कलियुग में नाम की महिमा विशेषरूप में गायी गई है। परमात्मा का नाम कोई भी रूप में लो। सब एक ही है। ये बहुत ही निर्भयता से समाज को कहना पड़ेगा। और कच्छ की धरती पे दादा मेकरण आदि संतों ने बहुत ही महत्त्व के काम किए। शब्दों में शोर नहीं होता, शब्दों में सुगंध होती है। हां, शोर तो हम करते हैं, क्योंकि हम को ऐसा होता है, हमारा शब्द पहुंचा की नहीं? फ़कीरों के पास शब्द की सुगंध होती है। और शोर न करना पड़े। उसकी खुश्बू पहुंचती ही है। शब्द का रूप है। शब्द में रस है। शब्द में गंध है। शब्द तो शब्द है ही और शब्द में स्पर्श है। किसी भी शब्द में सुगंध है साहब! जिसने अनुभव किया होगा वो बोल नहीं सकते। तुलसीदासजी तो 'रामायण' में यही लिखते हैं कि -

सद्‌गुर बैद बचन बिस्वासा।
संजम यह न बिषय कै आसा।।

उनके शब्द को, उनके वचन को जिसने विश्वास से सुना उसकी खुश्बू आती है साहब। परवीन शाकीर ये कहती हैं -

तेरी खुश्बू का पता करती है।
मुझ पे एहसान हवा करती है।
मुझको इस राह पे चलना ही नहीं,
जो मुझे तुझसे जुदा करती है।

शब्द में रस तो है ही। कोई मनुष्य ऐसे सुंदर शब्द कहता है तो हमें उसमें रस आता है। नौ रस में शब्द हमको नहलाते हैं। शब्द स्पर्श करते हैं, टच करते हैं। कितना भी दूर से शब्द को बोला जाए किन्तु कुछेक ऐसा शब्द आ जाए, तो हमारी आंखे भर आती है। स्पर्श का लक्षण शब्द में है। शब्द का रूप है। शब्द एक देवता है। उसका एक रूप है। शब्द को पहचान ने वाला शब्द को खड़ा कर सकता है। शब्द देवता के रूप में प्रकट होता है। भीतरी श्रद्धा होनी चाहिए। व्याख्या में ये नहीं होता, साहब! जिसके उपर पूरी गुरुकृपा होती है वो महापुरुषों ने ऐसा सारा अनुभव किया है। तो शब्द की महिमा है। परमात्मा का नाम शब्दब्रह्म है। मेरे 'मानस' के मत तो प्रणव का पर्याय है ये। तो शब्द की बात, नाम की बात, नाम और नामी दो नहीं है। तत्त्वत: एक ही है। नाम और रूप तत्त्वत: एक ही है। तो तुलसीदासजी ने नाम की बहुत महिमा गायी।

'अशोकवाटिका' लंका में स्थित एक वाटिका का ही केवल नाम नहीं है। ये मेरे और आपके जीवन का एक सत्य है। जीवन में सब मिश्रित है। द्वंद्वात्मक ये सृष्टि है। 'अशोकवाटिका' में क्षय भी है और अक्षय भी है। अक्षयकुमार रावण का बेटा 'अशोकवाटिका' में आया और दूसरी ही मिनट में उसका क्षय भी आया। 'अशोकवाटिका' में भय भी है और शांति भी है। राक्षसी जानकीजी को भयभीत करती है, रावण भी आकर डराता है। और शंकराचार्य भगवान की बाणी में सीताजी स्वयं शांति है। 'अशोकवाटिका' में आसुरीवृत्ति की राक्षसी भी है और वही 'अशोकवाटिका' में संतवृत्ति की त्रिजटा भी है। 'अशोकवाटिका' में आक्रमण भी है और रक्षण भी है। समस्या भी है, समाधान भी है। संदेह भी है, भरोसा भी है।

सीता की खोज ही शक्ति की खोज है, भक्ति की खोज है

'मानस-अशोकवाटिका', जिसके सात्त्विक-तात्त्विक संवाद प्रधानरूप में ये कथा हो रही है। बहुत सारे प्रश्न हैं, जिसमें गुजरे कल की जिज्ञासा है वहां से शुरू करता हूं। मूल पहले 'रामायण' संबंधी प्रश्न है कि भगवान राम को इतना हठाग्रह-दुराग्रह किसलिए? मैं संक्षिप्त में कहूं जो पूछा है कि पिताजी ने इनको कोई आदेश नहीं दिया वन में जाने का, तो माता ने भी आदेश रूप में नहीं कहा कि तू वन में जा। तो फिर भगवान राम का इतना हठाग्रह किसलिए कि ऐसी हालातों में वन में जाने को तैयार हो गए? दूसरी बात इसके साथ जुड़ी है कि सीताजी को सब ने समझाया तो सीताजी रुकी क्यों नहीं जबकी महाराज दशरथ की स्थिति प्राणसंकट समान थी। सीता को तो वनवास नहीं दिया परंतु सीता ने पति सेवा को इतना महत्त्व दिया कि परिवारजनों को गौण कर दिया? गुरुकृपा से मैंने जो समझा, संतों से जो सुना, थोड़ा-बहुत कुछ पढ़ा, विद्वानों के साथ थोड़ा वार्तालाप हुआ। बाकी तो साधु के अंत:करण की प्रवृत्ति होती है, वही आपके साथ बातों में करता हूं।

तुम्हारे पिता तुम्हें आदेश न दे परंतु उनके मन में उन्होंने किसी को वचन दिया हुआ है कि मैं आपको लाख रूपये आपके प्रसंग में दूंगा, फिर प्रसंग आता है और पुत्र को आदेश न दे परंतु पुत्र यदि पुत्र है तो बाप के मन का संकल्प पूरा करना पुत्र का कर्तव्य है। यद्यपि राजा ने आदेश नहीं किया पर पिता वचनबद्ध है। राम जैसा पुत्र पिता के वचनों का पालन नहीं करे तो भारतीय संस्कृति के भविष्य के लिए आप क्या सोच सकते हो? आपने देखा, वहां आदेश नहीं है ये बात श्रोता ने बराबर पकडी है परंतु हमें ये भी खयाल होना चाहिए कि राम जब वन में जाते हैं तब 'वचन' शब्द का प्रयोग करते हैं। अपने यहां संतसाहित्य, अपनी साधनापद्धति में वचन की महिमा बहुत है। बाप, आदेश तो वेद देते हैं, उपनिषद देते हैं, आचार्य देते हैं, 'भगवद्गीता' देते हैं कि 'युद्धाय कृतनिश्चिय...' 'मामेकं शरणं व्रज।' इन आदेशों से ज्यादा हमारे यहां वचन की महिमा है।

भगवान राम कहते हैं कि भले पिता का आदेश नहीं, माँ ने भले ही स्पष्ट रूप से नहीं कहा हो परंतु मैं वचन में जाता हूं क्योंकि माँ, 'तात बचन'; तीनों में वचन का बहुत ध्यान रखना पड़ता है बाप! शास्त्रवचन का प्रामाणिकता से निर्वाह करना। जब तक हमारी कक्षा ऐसी ना हो कि हम शास्त्र को ओवरटेक कर दे। एक ऐसी अवस्था भी साधना में है जहां शास्त्र रह जाए और साधक आगे निकल जाए। दूसरा सत्यवचन, कोई हमें सत्यवचन कहे तो हमें स्वीकारना चाहिए, दुश्मन कहे तो भी स्वीकारना। यहां पर मुझे जो आपसे बात करनी है वो है पिता के वचनों की बात। अंत में मुझे तो यही कहना है कि दूसरे वचनों का पालन हो कि ना हो पर गुरुवचन कभी भी तोड़ना नहीं। मैं बहुत ही दिल से कहता हूं कि हम टिके ही गुरु वचनों पर है। यहां वचनों की महिमा है साहब! आदेश तो एक पुलिसमेन भी दे सकता है। कोई अधिकारी भी दे सकता है पर यहां वचन की बात है। और हम गुरु तक गए। उपनिषद 'आचार्य' शब्द का प्रयोग करते हैं परंतु हम उसकी जगह पर 'गुरु' शब्द का प्रयोग करेंगे। हमारे उपनिषदों ने कहा है, 'मातृदेवो भव', 'पितृदेवो भव।' ये दो सीढ़ी पहले चढ़ने की बात है। इसका ये अर्थ है कि माँ का वचन, बाप का वचन फिर आचार्य के वचन का पालन। इसलिए आदेश नहीं फिर भी पिता के वचन है तब क्या पुत्र बाप का मनोरथ पूरा नहीं करेगा? आदेश से ज्यादा अधिक महिमा वचन की है। तो मेरे पिता ने किसीको वचन दिया उसे मुझे पूरा करना चाहिए। ये पुत्र का कर्तव्य है। अधिकारी शिष्य गुरु के वचन को पूरा करता है। इसलिए भगवान राम जिद्द नहीं करते हैं कि मुझे जाना ही है। यहां कोई जिद्द नहीं है। राम और जिद्द का कभी मेल ही नहीं है। राम तो बहुत सरल है।

दूसरी बात, सीताजी क्यों गई? पतिसेवा को इतनी महत्ता क्यों? इसका जवाब बहुत ही सरस देती है सीताजी, सूर्य को छोड़ प्रभा कहां जाए? चंद्र को छोड़ चंद्रिका कहां जाए? और राघवेन्द्र, पुरुष को छोड़ उनकी छाया कहां जाएं? मैं तो तैयार हू, जहां भी रखो। जिद्द नहीं, ये एकत्व है। जानकी और राम अलग हो ही नहीं सकते। इसलिए मेरी दृष्टि से इसमें कोई प्रश्न नहीं उठता।

बाप! जटायु के कहने के अनुसार राम को तो पता था कि सीता को रावण उठाकर ले गया है। सीता को लंका में रखा है। फिर वानरसेना को चारों दिशाओं में दौड़ाने की क्या जरूरत थी? शक्ति का व्यय करने के लिए? नहीं, शक्ति के व्यय के लिए नहीं, शक्ति को खोजने के लिए दौड़े है। महाशक्ति प्राप्त करने के लिए दौड़े थे। बाकी ब्रह्म के रूप में राम को सब पता था। शक्ति का व्यय है ही नहीं। गुरु एक मिनट में सब दे सकता है फिर भी शिष्य के पास थोडी कमाई कराता है। थोड़ी साधना जरूरी है। जब तक हमें ये पता चले कि मेरी साधना से कुछ होनेवाला नहीं है तब तक साधना जरूरी है। जानकी मतलब पराम्बा, पराशक्ति, ये शक्ति की खोज है। और दसों दिशाओं में भेजने का अर्थ भी है कि भक्ति के लिए निकलो तो दिशा का विचार नहीं करना। क्योंकि भक्ति में दिशा का महत्त्व नहीं होता, दशा का महत्त्व होता है। सीता की खोज शक्ति की खोज है, भक्ति की खोज है। साधन करना है, जब तक ये पता नहीं चले कि साधन से कुछ नहीं होता तब तक साधन आवश्यक है।

अब तीसरा प्रश्न, 'बापू, 'श्रीमद् भागवद्' कथा में ऐसा कहा गया है कि व्रजवासी कानुडा के कहने पर इन्द्र की बजाय गोवर्धन की पूजा करते हैं, जिससे इन्द्र नाराज हुआ और व्रज पर कोप बरसाया और फिर कृष्ण ने गोवर्धन धारण किया तथा व्रजवासीयों को बचाया। तो क्या इन्द्र को ये पता नहीं था कि कानुडा खुद विष्णु है, स्वयं भगवान है और उनके सामने नहीं जाना चाहिए। कृष्ण अवतार में मेरी दृष्टि से आठ ही व्यक्ति कृष्ण को पहचान पाए हैं, इन्द्र का उसमें नाम नहीं है। तो इन्द्र राम को कैसे पहचान सकता है? इन्द्रो कभी राम को न पहचान सके। इन्द्रीयातीत ही पहचान सकता है। जो गुणातीत हो, जो ऋषिकेश होगा वही ऋषिकेश को समझ सकेगा। कृष्ण के सामने इन्द्र कुछ नहीं। जो जिसका वरण करता है वही उसे समझ सकता है। ये औपनिषदीय सिद्धांत 'मानस' में इस तरह से प्रस्थापित हुआ है।

आगे का प्रश्न, 'बापू, सीताजी का क्या दोष था कि राम ने उनका त्याग किया? क्या एक सामान्य प्रजाजन कहता है कि सीता का स्वीकार राम को करना नहीं चाहिए क्योंकि सीता लंका में रहकर आई है। तो क्या राजा को एक सामान्यजन के कहने से ये महत्त्व का निर्णय ले लेना चाहिए? ये भी एक धोबी के कहने से? राम ने सीता का त्याग नहीं करना चाहिए था। मैंने अहमदाबाद की एक कथा में युवा भाई-बहनों से बात कही कि तीन शब्द याद रखो। एक, 'निमित्त', दूसरा, 'नियति', तीसरा 'नेति।' इस प्रसंग में भी तीनों वस्तुओं का विचार करना पडे। धोबी केवल निमित्त है, फिर भी परमात्मा एक मानव की बात सुनकर ऐसा निर्णय लेते हैं। इसमें मैं और आप कुछ निश्चय नहीं कर सकते क्योंकि 'अति विचित्र भगवंत गति।' वहां 'नेति' आती है। और नियति अपना काम करती ही है। नियति किसी को छोड़ती नहीं।

जीवन में आते स्पीडब्रेकरों के लिए हमें ये तीन शब्द याद रखने चाहिए कोई 'निमित्त' होता है। भगवान की गति समझाती नहीं इस लिए 'नेति' कहकर खड़ा होना पड़ता है। और 'नियति' का हमें पता नहीं है। और आप बहुमती की बात करते हो। रामकाल का लोकतंत्र ऐसा था जिसमें बहुमती राज नहीं था, सर्वमती था। और सर्वमती जब हो तो एक छोटे से मानव के मत पर से भी सत्ता में परिवर्तन हो जाता है। राम और कैकेयी माता का चुनाव हो तो बहुमती राम को ही मिले। कैकयी को तीन मत मिले, एक खुद का, दूसरा मंथरा का और तीसरा राम का। क्योंकि राम तो उदार है। वो तो माँ को ही मत देंगे। एक बात याद रखना, इस प्रसंग में राम 'सीतापति' नहीं, 'प्रजापति' है। अथवा आज के लोकतंत्र की भाषा में कहूं तो राम राष्ट्रपति है। प्रजापति, राष्ट्रपति के रूप में छोटे से छोटे व्यक्ति के मत का विचार करना राम का कर्तव्य है। बाकी नियति। और चिंता क्यों करते हो जब सीता ही शिकायत नहीं करती है! थोड़ी व्यक्तिगत पीड़ा मुझे है कि माँ जानकी की पहले अग्निपरीक्षा और फिर सगर्भा स्थिति में दूसरी बार वनगमन! परंतु ये रहस्यों समझ में नहीं आते।

'बापू, आप कहते हो कि राम ने राक्षसविहीन की पृथ्वी करने की प्रतिज्ञा ली थी जिससे सीता नाराज हो गई और कहती है कि मुझे पूछना चाहिए था। मैं भी जगत की माता हूं, राक्षसों की भी माँ हूं परंतु राक्षसों अनिष्ट से भरे हुए हैं इनका क्या? उनका तो नाश होना ही चाहिए। इसलिए रामजी ने प्रतिज्ञा की-

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह ।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ।।

और सीताजी कहती है कि मुझसे पूछे बिना ऐसा निर्णय क्यों लिया? लेकिन सीता ने राम के निर्णय का विरोध नहीं किया बल्कि निर्णय किया कि तुमने मेरे बालकों को मार देने का निर्णय लिया तो मैं ये निर्णय लेती हूं कि जितना समय इन लोगों के पास है उतना उनके साथ रहूं, ये मेरा फ़र्ज है। जानकी का अपहरण रावण कर ही न सके। माँ तो इसलिए लंका गई कि रावण थोड़े दिन का मेहमान है। उसे बड़ा रोग हुआ है जिससे थोड़ा समय उसके साथ रहूं।

बाप! 'मानस-अशोकवाटिका'; 'रामचरित मानस' में बन, बिपिन, अरण्य, बाग, उपवन, वाटिका आदि शब्दों का विस्तारपूर्वक उपयोग तुलसीदास ने किया है। 'बन' का अर्थ है विस्तार, जिसमें बहुत सारे जीवजंतु, हिंसक प्राणीओं का निवास हो; जिसमें से निकलना कठिन हो उसे वन, अरण्य कह सकते हैं। उपवन ये विहार का स्थान माना जाता है। हमारे संस्कृत ग्रंथों में, राजा या विशेष व्यक्ति खुद के उपवन रखते थे और विहारस्थल के रूप में काम में लेते थे। बाग का अर्थ होता है आराम, पुष्पवाटिका के लिए तुलसीदास ने 'आराम' शब्द लिखा है। जनक का बाग, आराम का पर्याय है। हमारी चर्चा वाटिका की है। कल हमनें चर्चा की थी कि दोनों वाटिकाओं के केन्द्र में सीता है। चाहे जनक की पुष्पवाटिका हो या रावण की अशोकवाटिका। फ़र्क बस इतना है कि पुष्पवाटिका में राम साथ है, जब कि अशोकवाटिका में सीता अकेली है। वहां राम नहीं, रावण है। ये तात्त्विक भेद है। और पुष्पवाटिका में गौरीमंदिर है, जब कि अशोकवाटिका में कोई मंदिर नहीं। पुष्पवाटिका में सखियां है जो मार्गदर्शक है, अशोकवाटिका में एक ही व्यक्ति है त्रिजटा, बाकी सब राक्षसी है जो रावण के आदेश से विचित्र रूप धारण करके सीता को डराती है। पुष्पवाटिका में राम-सीता है परंतु हनुमान नहीं, अशोकवाटिका में हनुमान प्रवेश करते हैं, और हनुमान को अशोकवाटिका में जाने की युक्ति विभीषण बताता हैं।

सीता तुलसी की दृष्टि में भक्ति है और भक्ति तक पहुंचने की युक्ति एक असुर हनुमानजी को बताता है जिसे हम जुगति कहते हैं। कल 'भागवत' के आधार पर तीन युक्ति हमनें देखी-

श्रवणं, कीर्तनं, विष्णोःस्मरणं, पादसेवनम् ।
अर्चनं, वन्दनं, दास्यं, सख्यं, आत्मनिवेदनम् ।।

आज किसी ने मुझसे प्रश्न पूछा कि मृत्यु के भय का निवारण किस तरह हो सकता है। तो मृत्यु का निवारण स्मरण से हो सकता है, 'हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ।' 'रामायण' में लिखा है कि ये छः चीज विधाता के हाथ में है लेकिन हम कथा सुनके विवेक प्राप्त करके विधाता से कह सकते हैं कि हानि तेरे हाथ में होगी पर में हारूंगा नहीं, गुरुकृपा से ये मेरे हाथ में है। लाभ भले विधाता के हाथ में है पर शुभ मेरे हाथ में है। जीवन तेरे हाथ में है, किस तरह से जीना ये मेरे हाथ में है। मरण तेरे हाथ में है परंतु परमात्मा का स्मरण मेरे हाथ में है। और स्मरण ही मृत्यु के भय को थोड़ा कम कर सकता है। बाकी ये तो ध्रुव सत्य है। इससे डरना नहीं। अब 'पादसेवन' ये चौथी भक्ति है 'भागवत' की। इसकी युक्ति क्या? पहले तो हम ये समझ लें कि अपने यहां पांच वस्तुओं का महत्त्व है। पाद मतलब चरण, चरणस्पर्श। दूसरा चरणप्रक्षालन, आश्रित लोग अपने गुरु के चरण धोते हैं। तीसरा चरणपूजा। चौथा चरणवंदन, पांचवां चरणसेवा। बाप! कलियुग का प्रभाव सब जगह फैल गया है। गुरुचरणों की पूजा की महिमा है साहब, इसे मैं नकार नहीं सकता। गुरु चरणस्पर्श की महिमा है। सेवा की महिमा है। लेकिन कहीं व्यक्तिपूजा न आ जाय!पादसेवन का अर्थ चरण प्रक्षालन। चरण का स्पर्श करना। चरण का पूजन करना। पाद यानी परण। और ऐसे ही हमारे गुरु ने कोई भजन लिखा हो और उसकी अंतिम पंक्ति याद रह जाए और जीवन में उतरे ये 'पादसेवनम्।' पाद मतलब गुरु ने गाया हुआ पद। तो चरण का मेरा अर्थ है, गुरु का कोई एक सूत्र, गुरु का कोई एकाद पद, एक वाक्य।

नामाचरण ये पादसेवन भक्ति की युक्ति है मेरी व्यासपीठ की समझ के हिसाब से। गुरु परंपरा में गुरु चरणस्पर्श इन सबकी महिमा है पर ठाकोरजी के वचन 'करिष्ये वचनं तव...' मेरी दृष्टि से पादसेवन है।

'अर्चनं'; किसी का अचर्न करना हो तो अहंकारमुक्त चित्त से करना। मैंने आपकी इतनी पूजा की, अर्चना की, चाकरी की, इसका अहंकार नहीं करना ये उसकी युक्ति है। हम क्या करते हैं, अर्चना करते हैं, और 'मैंने की' उसकी चर्चा भी करते हैं! हमनें सेवा की इसमें अहंकार न आए इसका ध्यान रखना। सावधान रहना, नरसिंह हमें सिखा गए-

हुं करुं, हुं करुं ऐ ज अज्ञानता,
शकटनो भार जयम श्वान ताणे।

मेहताजी की दृष्टि में अज्ञानता की ये व्याख्या है। 'वंदनं'; वंदन का अर्थ मैंने एक संत के पास से सुना कि दूसरों को जो हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं ये कबूल करना है कि मैं प्रणाम करता हूं। इसीलिए मैं वचन देता हूं कि मैं अप्रमाणिक नहीं बनूंगा। ऐसे बहुत आश्चर्य होता है कि ये सब जगत है साहब! धर्मक्षेत्र भी इससे वंचित नहीं! सामने आके आपकी वाह-वाह करते हैं फिर बाद में तुम्हारी चर्चा करते है! अब आपका जप कहां गया? माला कहां गई? गुरु की महिमा कहां गई? वंदनभक्ति में अप्रमाणिक नहीं होना गुरु के प्रति। वंदनभक्ति कि युक्ति है कि वफ़ा नहीं छोड़नी आश्रित ने गुरु के प्रति दास्य भक्ति; पांडुरंगदादा का अर्थ बहुत पुराना सुना कि दास ऐसी जगह का दास हुआ होता है कि उसे जिंदगी में किसी दिन उदास नहीं होना पड़ता। जिस दिन हम उदास होंगे उस दिन समझना कि हमारी निष्ठा पक्की नहीं थी। गुरु को पा के उदास नहीं रहना, उदासीन रहना। एक ऐसी ऊंचाई पर रहना जहां पर निंदा, अस्तुति, सत्कार और अपमान हमें स्पर्श न कर सके। ऐसा एक उच्च आसन, बस ये है दास्यभक्ति की युक्ति व्यासपीठ की दृष्टि से।

आठवीं भक्ति 'सख्यं'; परमात्मा का सखापन। सख्य समान लक्षण पर, समान व्यसन पर आधारित है। दो व्यक्तियों के बीच मित्रता ये समानशील और समान व्यसनों के प्रमाण में ही होती है। व्यसन मतलब जो हम कुछ पीते हो या कुछ खाते हो इतना ही नहीं। व्यसन का अर्थ संस्कृत में दुःख है। भक्ति के लिए 'व्यसन' शब्द विशेषण में आता है इसीलिए भक्ति व्यसनात्मक होनी चाहिए। सख्यभक्ति, परमात्मा के साथ समान शीलपन। हरि में शील है, गुरु में शील है। तुलसी तो 'विनयपत्रिका' में ऐसा ही कहते हैं कि मैं किसी ऐसे गुरु, किसी ऐसे साधु की तरह कब जी पाउंगा?

कबहुँक हौं यहि रहिन रहौंगो।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपातें संत-सुभाव गहौंगो।।

मेरे गुरु, मेरे प्रभु, मेरे हरि, इनका शीलवानपना मेरे में आए, ये सख्यभक्ति प्रति गति है। और अंतिम भक्ति है 'आत्मनिवेदनं'; शायद ये आठ पडाव पूरा करने के बाद ये स्थान आता होगा। क्योंकि आत्मनिवेदन के लिए बहुत हिंमत चाहिए। जो निर्भय है वो अभय है। गांधीजी 'सत्यना प्रयोगो' लिखते हैं, खुद की आत्मकथा लिखते हैं। अभय हो के लिखते है। मोरारजीभाई ने भी अभय होकर लिखा। उनकी जो समाधि है उसका नाम भी 'अभयघाट' है। बहुत कठिन है। सत्य के बिना अभय हो ही नहीं सकता। आत्मनिवेदन के लिए साहस चाहिए। इतना बडा सद्ग्रंथ देनेवाला महापुरुष कहता है कि 'मैं मतिमंद हूं', मेरे जैसा कोई दीन नहीं। ऐसा ही आत्मनिवेदन हमारी संत परंपरा में सब ने किया है। ये नववीं भक्ति की युक्ति हिंमत, साहस है। पोथी खोलना सरल है परंतु मन खोलना कठिन है। ये युक्ति है। जानकीजी भक्ति है 'अशोकवाटिका' में और वहां तक पहुंचने के लिए विभीषण हनुभानजी को युक्तियां बताते हैं।

सीताजी को तुलसीदासजी ने शांति कहा है। शांति की पांच युक्तियां गुरुकृपा से समझाई। और तुलसीदास ने सीता को आदिशक्ति कहा है। शक्ति को पाने की चार युक्तियां जो समझ में आई ये बात आपके साथ करूंगा। शांतिरूपी सीता को पाने की पहली युक्ति है एकांत। भले स्थूलरूप में हो परंतु एकांत जरूरी है। जगद्गुरु शंकर ने कहा, 'एकांते सुखमास्यताम्।' स्थूल रूप में हम उकता जाते हैं जब कहते हैं कि भाई, अब तो शांति लेने दो। अथवा सप्ताह के लिए हमें कहीं एकांत में जाना चाहिए। ये लोकभीड़ है और साधकों के तप को कम करने का सफल प्रयोग है। तुलसीदास तो लोकप्रतिष्ठा को

अग्नि कहते हैं। एकाग्रता और एकांत में फ़र्क है। एकाग्रता का अर्थ किसी एक की अग्रता है। एकांत का अर्थ कि अब एक की भी जरूरत नहीं। एकांत ही शांतिरूपी सीताको पाने का पहला चरण है।

दूसरी युक्ति है, शांति पाने के लिए हो सके वहां तक रात का समय पसंद करना। इसीलिए भजनानंदी महात्मा रात को पसंद करते हैं। 'या निशा सर्व भूतानाम्'; योगेश्वर भी कहते हैं कि जब पूरा विश्व सोता है तब साधु जागते हैं। रात एकांत में मदद करती है। दिन में रजोगुण बहुत होते हैं, सुबह के समय को सत्वगुण कहते हैं परंतु नौ-दस बजे से रजोगुण शुरू हो जाता है। किसी को ओफ़िस जाना है, किसी को विवाह में, किसी को बेठक में जाना ये सब रजोगुण में समा जाते हैं। रात साधुओं की साधना का समय है। इसलिए रात का समय ये शांति युक्ति है। रात रोने के लिए और दिन देखनें के लिए है। मन के जितने संकल्प-विकल्प कम हो, ऐसा साधक ने अभ्यास करना क्योंकि संकल्प-विकल्प हमें शांत नहीं होने देते। ये कठिन कार्य है। ये सब बोलना सरल है। मुझे पता है लेकिन है शांति की ये युक्ति जरूर इसलिए जगद्गुरु कहते हैं 'अहं निर्विकल्पो...' मैं निर्विकल्प हूं। विकल्पमुक्त जिसका संकल्प होगा उसका संकल्प उनके गुरु पूरा करेंगे। विकल्प नहीं होना चाहिए। विकल्पमुक्त होना चाहिए। ये तीसरी युक्ति है।

चौथी युक्ति, डरना नहीं। ये शांति का लक्षण है क्योंकि डरता है उसे शांति नहीं होती। पर ये कठिन है। बोलना आसान है कि डरना नहीं। मैं भी एक शब्द कहता रहता हूं 'डरे वो बावा नहीं।' पर कठिन है! लेकिन भय न होना ये शांति की कुंजी है। दो वस्तु बहुत सताती है, एक भय और दूसरा प्रलोभन। हम धर्म का आचरण करते हैं तो या तो डर से करते हैं या किसी प्रलोभन से। बहुत-सी धारा हमारे देश में धर्म की आई जिन्होंने प्रलोभन देकर हमारे मूल धर्म को चुकाया और नासमझ लोग प्रलोभन में फंस कर मूल धर्म को भूल गए! और पांचवां अभी कहा प्रलोभन। प्रलोभन हमें अशांत करता है, हमें लालायित करता है, हमें ठगता है, हमें भ्रमित करता है। ये सब गुरुकृपा से सीखा इसीलिए शांतिरूपी सीता को मिलने की ये पांच कुंजियां है। और शक्तिरूपी सीता को प्राप्त करने के चार सूत्र है, जिनकी चर्चा कल करेंगे।

थोड़ा कथा का क्रम आपको सुना दूं। कल हमनें रामनाम की वंदना की। रामनाम की महिमा गाई। तुलसीदासजी के क्रम अनुसार 'रामचरित मानस' की रचना शिव ने की और उनके चार घाट बनाए। तुलसीदास शरणागति के घाट पर से कथा का आरंभ करते हैं। हमको कर्म के घाट प्रयाग पर ले जाते है। प्रयाग में भरद्वाजजी याज्ञवल्क्य को प्रश्न पूछते हैं कि रामतत्त्व क्या है ये समझाओ। याज्ञवल्क्य महाराज विवेकपूर्ण ढंग से रामकथा का आरंभ करते हैं। पहला प्रसंग शिवचरित्र का कहा। ये है सेतुबंध। कथा तो राम की है परंतु आरंभ होती है शिवकथा से। इस घाट से ये लगता है कि शिव राम के निजमंदिर तक पहुंचने का द्वार है। इसीलिए शिवतत्त्व के बिना राम-कृष्ण की भक्ति सफल नहीं होती। शिव के बिना राम-कृष्ण को नहीं समझा जा सकता। इसीलिए कथा की शुरूआत शिवचरित्र से हुई।

एक समय के त्रेतायुग में भगवान शिव सती को लेकर कुंभज ऋषि के आश्रम में कथाश्रवण करने गए। कुंभज ने दोनों की पूजा की। शिव ने पूजा का सही सीधा अर्थ निकाला पर सतीने ऊलटा अर्थ निकाला कि हम आए तो हमारी पूजा करने लगे महात्मा, ये क्या खाक् कथा कहेंगे? नम्रता का गलत अर्थ किया। इस समय त्रेतायुग की रामलीला चालू थी। सीता का अपहरण हुआ था। राम रोते-रोते मानवलीला करते हैं। इस समय शिव और सती वहां से निकलते हैं। राम को शिव प्रणाम करते हैं। ये देखकर सती के मन में संदेह उत्पन्न होता है कि मेरे पति तो परमतत्त्व है और इस मानव की पत्नी खो गई इसमें इतना रोता है और 'सच्चिदानंद' कह के प्रणाम करते हैं। सती को संदेह होता है कि ये ब्रह्म नहीं। भगवान शंकर समझाते हैं पर सती मानी नहीं। शिवजी ने कहा, देवी, तुम्हारें मन में संदेह है कि ये ब्रह्म नहीं तो अब तुम खुद जा के परीक्षा करो और निश्चय करो। सती राम की परीक्षा करने गई। ऐश्वर्य देखा। भगवान शंकर ने पूछा। निश्चय हो गया? कहा, हां महाराज पर छुपाया। शिवजी ने ध्यान में देखा और भगवान शंकर ने परमात्मा की प्रेरणा से संकल्प किया कि मेरी पत्नी सती जो सीता का रूप ले तो उनके साथ गृहसंसार नहीं रख सकते हैं, क्योंकि सीता मेरी माता है। सती का ये शरीर होगा तब तक मेरा और उनका कोई संबंध नहीं।

शिवजी कैलास पहुंचकर घर के बाहर स्वाभाविक अखंड समाधि में डूब गए। सत्तासी हजार साल तक शिवजी समाधि में रहे। सत्तासी हजार साल बाद शिव जागते हैं। सती शरण में आती है। शिवजी ने सामने आसन दिया। शिवजी रसप्रद कथा कहते हैं। इसी समय सती के पिता दक्ष के यहां यज्ञ आरंभ हुआ है। दक्ष ने यज्ञ में सबको बुलाया। शंकर, विष्णु और ब्रह्मा को नहीं बुलाया। तो सती कहती है कि मैं तो उनकी पुत्री हूं। आप नहीं आओ तो कोई बात नहीं, मैं तो जाऊंगी। सती पिता के घर आती है। दक्ष के भय के कारण कोई भी सती का सत्कार नहीं करता। सती को बहुत दुःख लगा। सती दक्ष के यज्ञ में देहविलय करती है। दक्षकन्या बुद्धि का प्रतीक है, ऐसा पंडित रामकिंकरजी महाराज कहते हैं। जल गई जो बुद्धि और अब हिमालय की श्रद्धारूप में प्रकट हुई पार्वती रूप में। पुत्री बड़ी होने लगी। एक दिन नारद पधारे। उन्होंने पार्वती का नामकरण संस्कार किया और भविष्य की हस्तरेखा देख कहा कि हिमालय, तुम्हारी पुत्री को 'अगुन अमान मातु पिता हिना', ऐसा पति मिलेगा। माता-पिता को खराब लगा कि इतनी सुंदर पुत्री और ऐसा वर? पार्वती समक्ष गई कि जो लक्षण बताएं है ये तो महादेव के लक्षण है। नारदजी ने कहा कि आपकी पुत्री तप करे तो शिव मिले और शिव मिले तो दूषण भूषण बने। पार्वती तप करने बैठी। एक तरफ भगवान शिव ध्यान करते थे इतने में भगवान प्रकट हुए और कहा कि तुमने जिस सती का त्याग किया वो हिमालय के घर पुत्रीरूप में जन्मी है। अब आप उनके साथ विवाह करो। शिवजी ने आदेश सिर-आंखों पर लिया। फिर वहां सभी देवता आए और शंकरजी की प्रशंसा करने लगे। शंकर समझ गए, तुम देव हो, मैं महादेव हूं। तुम कहो इसीलिए मैं ब्याहूं इतना मूर्ख नहीं! परंतु मेरे हरि ने मुझे आदेश दिया है। महादेव नंदी पर सवार हुए। हाथ में त्रिशूल लिया। नंदी धर्म का प्रतीक है। जवान लडकों, जब विवाह करो तब सवारी धर्म की रखना। सच्चे-झूठे विचार ये शिवतत्त्व को घेरे हुए बारातियों है साहब! हमारे अंदर का जो शिवतत्त्व है उसे मजबूत-कमजोर विचार घेरकर आवृत्त करते हैं। सब हिमाचलप्रदेश पहुंचते हैं। महारानी मयना ने आरती उतारी और शंकर के गले में सर्प, बिच्छु आदि देखा! महारानी मयना मूर्छित हो गई!

नारदजी ने सारी बात बताई, 'मयना, जिसे तुम अपनी पुत्री कहती हो वो तुम्हारी पुत्री है ही नहीं। वो तो तुम्हारी भी माँ है। ये पराम्बा, जगदंबा, पार्वती है। तुम्हारे घर पुत्री बनकर आई ये आपका सद्भाग्य है। और जिसका तुमने अपमान किया ये साक्षात् महादेव है।' इसका अर्थ मुझे इतना समझ में आया, इस बात को हंमेशा दोहराया ही है कि हमारे आंगन में शिवतत्त्व खड़ा होता है। हमारे अंदर शक्तितत्त्व होते हैं पर नारद जैसे गुरु जब तक हमें समझायें नहीं तब तक इन तत्त्वों की जानकारी मिलती नहीं। इसीलिए गुरु की आवश्यक्ता हंमेशा होती है। नया भाव जागा। सब ने पार्वती के चरणस्पर्श किए और फिर भगवान शिव की शोभायात्रा निकली। भगवान शिव को हिमालय ने कन्या अर्पण की। शिवजी के साथ पार्वती कैलास पधारी। समयमर्यादा पूरी हुई। कार्तिकेय का जन्म हुआ। उन्होंने परम पुरुषार्थ के द्वारा ताडकासूर नाम के राक्षस का वध किया और निर्वाण दिया। फिर भगवान शंकर एक दिन कैलास के श्रुतिविदित, वेदविदित वटवृक्ष की छाया में सहजासन में बैठे हैं। पार्वती आती है और प्रश्न पूछती है और फिर कैलास के इस ज्ञान घाट से महादेव रामकथा का आरंभ करते हैं।

> गुरु खुद एक मिनट में सब दे सकता है फिर भी शिष्य के पास से थोड़ा कार्य कराता है कि थोड़ी कमाई कर। थोड़ी साधना जरूरी है। कहां तक जरूरी है? जब तक हमें ये पता चल जाए कि मेरी साधना से कुछ होनेवाला नहीं, तब तक साधना जरूरी है। जानकी यानी पराम्बा, पराशक्ति। ये शक्ति की शोध है। और दसों दिशाओं में भेजने का अर्थ ये भी है कि भक्ति के लिए तुम निकले हो तो दिशाओं का बहुत विचार मत करना। जो दिशा हो उस दिशा में निकल जाना। क्योंकि भक्ति में दिशा महत्त्व की नहीं, दशा महत्त्व की है। सीता की खोज ये शक्ति की खोज है, भक्ति की खोज है।

जनक की 'पुष्पवाटिका' और रावण की 'अशोकवाटिका' के केन्द्र में जानकी है

'मानस-अशोकवाटिका', जो इस कथा का मुख्य केन्द्रबिंदु है। कल हमने चर्चा की थी कि वन, उपवन, बाग, वाटिका ये सभी अलग-अलग अर्थ है। किन्तु वाटिका का एक ही अर्थ है कि जहां पुष्प ज्यादा हो। इसीलिए जनक राजा की जो वाटिका मिथिला में है, जिसको संतों ने विदेहनगर की वाटिका कहा है। रावण की 'अशोकवाटिका' वो देहनगर की वाटिका, ऐसा संतों से सुना है। परंतु विचित्रता यह है कि जनकराजा की जो पुष्पवाटिका है वो तो पुष्पकुंज के नाम के साथ पूरी तरह सार्थक है। वहां पुष्प ही है, फल है ही नहीं। और रावण की 'अशोकवाटिका' की करुणता ये है कि वहां पुष्प है ही नहीं, सिर्फ़ फल ही है। दोनों वाटिका के संदर्भ बहुत ही भिन्न है, रहस्यपूर्ण है। ये सभी गुरुमुखी रहस्य है। ये किसी भाषांतर में नहीं मिलेगा। इसके लिए गुरुमुख चाहिए। इसीलिए बहुत सोच-समझ के साथ ही व्यासपीठ का निवेदन है कि अभी तो मैं मंगलाचरण ही कर रहा हूं। कथा में प्रवेश नहीं कर सका।

तो, 'पुष्पवाटिका' में फूल है। फल तो मेरे गुरु देंगे। आश्रित की क्षमता है फूल। किन्तु रावण की तो देहनगर की वाटिका है। उसको देहाअभिमान है। रावण माने वासनायुक्त पुरुष। जनक माने वासना से मुक्त मनुष्य, क्योंकि ऐसा-वैसा मनुष्य नहीं है जनक। जनकराजा जब अष्टावक्र के साथ बात करते हैं उसमें किसी देश की बात निकली तब अष्टावक्र जनक का हाथ पकड़कर कहता है कि तुम कौन से देश की बात कर रहे हो? आर्यावर्त? भारतवर्ष? कौन-सा देश? जनक कहता है, वो तो सिर्फ़ सीमित जमीन के टुकड़े हैं। और तभी 'ऋग्वेद' का जो शब्द याद आए, 'विश्वामानुष'; और विनोबाजी ने बहुत सुंदर भाष्य किया कि तुलसीदासजी विश्वमानुष है। वो सिर्फ़ भारत का ही नहीं, किन्तु विश्व के मानव है। पयगंबर विश्वमानुष है। ज्ञानेश्वर विश्वमानुष है। तुलसी विश्वमानुष है। कबीर विश्वमानुष है। एक बात हंमेशा याद रखना बाप, जिनमें साधुता आ जाती है वो किसी दिन भी एक देश का नागरिक नहीं रहता। वो तो समस्त विश्व का नागरिक बन जाता है। वो टुकड़े-टुकड़े में विभक्त न हो पाए। वो किसी एक धर्म में बंधकर भी न रहे। उसको बांध न सके। गुरु है वो विश्वमानुष है। वो हमारा अकेले का नहीं किन्तु सारे जगत का है। इसीलिए ही हमारे यहां एक शब्द आया, 'कृष्णं वंदे जगद्गुरुं।' कृष्ण को भी जगद्गुरु कहा। और 'रामायण' में राम को भी जगद्गुरु कहा -

जगद्गुरुं च शाश्वंत। तुरीयमेव केवलं।।
नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं।।

भगवान शंकर को हमने त्रिभुवन गुरु कहा। परंतु देहवादी हमारे जैसे लोग देहनगर की पुष्पवाटिका में सिर्फ़ फल को ही देखते हैं। फूल को तो देखते ही नहीं। मुझे और आप सबको फल ही चाहिए। या तो धर्म का फल चाहते हैं। या तो अर्थ का फल चाहते हैं। या तो कर्म का फल चाहते है। या तो मोक्ष का फल चाहते हैं। खुश्बू जीवन की कौन चाहता है? 'रामायण' रस की बात करता है, खुश्बू की बात करता है। इसलिए दोनों वाटिका के रहस्यों में गुरुमुख से इतना तफ़ावत लगता है। वैसे तो और कितने ही तफ़ावत निकल सकते हैं। यदि जरा सा प्लाट ज्यादा चौड़ा कर दे तो! जरा से हमारे ही खड़े किए जोल-झाड़ी में बूलड़ोजर घूमा दे तो! एक तो हमारे अहंकार का जाला, दूसरा हमारी इर्ष्या का जाला। ये हमने ही खड़े किए हुए ज़ाले हैं। इसमें बूलड़ोजर घूमाना पड़ेगा। और ये बूलड़ोजर किसी कंपनी से किराए पे नहीं मिलता। ये बूलड़ोजर तो गुरु के यहां से मिलता है। और वो इसका किराया भी नहीं लेता। वो ड्राइवर भी नहीं रखता। और सभी जाले-झाडियां साफ़ करके हमारा प्लोट थोड़ा ज्यादा साफ़-सूथरा बना देता है।

तो, इस दोनों वाटिका के केन्द्र में जानकी है। सीता के तीन रूप को हमने इस कथा में पसंद किया है। गोस्वामीजी कहते हैं, सीता यानी भक्ति। शंकराचार्य कहते हैं, सीता यानी शांति। और फिर तुलसी कहते हैं कि सीता यानी आदिशक्ति। और तीनों युक्ति विभीषण बताते हैं उसपे हम केन्द्रित हुए है। ये जो शक्तिप्राप्ति की, शक्ति के दर्शन की चार युक्ति, चार चाबी जो विभीषण ने हनुमान को दिखाई उसकी चर्चा हमको करनी है। किन्तु ऐसे सुबह से खयाल आते हैं कि हमारा प्लोट कितना छोटा है यार! ये सीता तीन रूप में ही है 'रामायण' में? जरा भी नहीं। थोड़ा-सा बूलड़ोझर घूमा तो ख्याल आया कि सीता के तो कितने रूप 'रामायण' में है! प्रमाण -

जनक सुता जग जननि जानकी।
अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।

पहला रूप सीता का जनक की बेटी का और ये बेटी हमारे परिवार में बेटी का जन्म होता है ऐसी नहीं है, अयोनि बेटी है। ये किसी के शरीर से उत्पन्न नहीं हुई। ये तो पृथ्वी से उत्पन्न हुई है। जनक ने खेत की खुदाई की। और उसमें जानकीरूप जैसी भक्ति निकली और दुष्काल खत्म हो गया। इस तरह मंगलाचरण में जाए तो सीता का रूप, 'उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं...' सृष्टि को उत्पन्न करता है, पालन करता है, लय करता है। 'कलेशहारिणीं'; पतंजलि ने जो योगसूत्रों में बताया वे पांचों कलेश का नाश करनेवाली और 'सर्वश्रेयस्करीं'; सारे जगत का कल्याण करनेवाली।

सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभामं।

'जनकसुता' एक रूप, दूसरा रूप। 'जनक सुता जग जननि जानकी।' दूसरा रूप जगत की माता का और 'अतिसय प्रिय करुनानिधान की।' राम की पत्नी वो तीसरा रूप। फिर गुरु ज्यादा प्लोट साफ करके दे तो फिर एक दूसरा रूप दिखे। जो मैंने आपको कहा, 'संजीवनी मूरि'; सीता तो संजीवन की जड़ है। जिसकी चर्चा मैंने आपके सामने रख दी विषवाटिका के संदर्भ में। फिर गुरुकृपा से थोड़े से झाड़ियां साफ़ हो जाय तो सीता का एक दूसरा रूप प्रकट हो, जिसका रोहिणीरूप सीता है। 'बिधु' और 'बुध' के बीच में जिसको रोहिणी अच्छी लगती हो। ये सभी के अर्थ करने जैसे हैं। इसमें एक भी शब्द अर्थ और व्याख्या के बिना नहीं है साहब! यानी, सीता के अनेक रूप है। तो उनको अनेक रूप में देखना चाहिए। वो रोहिणी है। फिर तुलसी का कहना है, 'ब्रह्म जीव बीच माया जैसी।' सीता माया है। जैसे ब्रह्म और जीव के बीच माया होती है, वैसे ही सीता-राम और लक्ष्मण के बीच में चलती है वही माया है। फिर मनु के सामने, 'आदिशक्ति जेहि जग उपजाया।' सीता आदिशक्ति पराम्बा है, महामाया है। थोड़ा-सा प्लोट साफ़ होने लगे तो फिर वापस एक दूसरा रूप दिखता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि सीता तो कोकिला है, कोयल है और ये कोयल है उसकी पहचान तो कोयल ही कर सकती है, कौए नहीं कर सकते। सीता आदिशक्ति है, अम्बा है। सबकुछ माँ ही है। तुलसीदासजी तो राम में भी माँ को देखते हैं। और 'उत्तरकांड' में उन्होंने कहा कि 'दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन...' एक दुर्गा नहीं, राम में अनंत दुर्गा दिखती है। असंख्य दुर्गा के दर्शन मुझे राम में होते हैं। जो दुष्कार्यो का नाश करता है। पराम्बा भगवती राम में साक्षात्कार करती दिखी। तो सीता आदिशक्ति है, क्योंकि राम और सीता दो नहीं है, वो अभिन्न है।

तो बाप, हम भी ये सोचे कि शक्तिरूप सीता को पाने के लिए विभीषण के मुख से गुरुमुखी वाणी में चार युक्तियां। एक, हम सबको शक्ति का अनुभव होता है शब्द से। हमारे अंदर समाई हुई शक्ति का परिचय हमको किसी बुद्धपुरुष के शब्दों से होता है। बुद्धपुरुष की बात को छोड़ दो, किन्तु किसी ओर के द्वारा भी हमारी थोड़ी सी वाह-वाही होने लगे कि तुम तो ऐसे हो, ये

शब्दों की जरा-सी छुअन से तो अंदर से हम बड़े बनने लगते हैं। शब्द सच्चा हो, पहचाननेवाला सच्चा हो तो उसमें शक्ति का निर्माण होता है। ये शब्द ही कर सकते हैं। ब्रह्म; ब्रह्म ही शक्ति को जगा सकता है साहब। और शब्द ब्रह्म है। शब्द को हमने ब्रह्म सहोदर या सगोत्र माना है। ये ब्राह्मणदेवता जब चंडीपाठ करते हैं यज्ञ में और जो माताजी के श्लोक शुरू हो तो असर नहीं करते? शब्द की ताकत है मनुष्य में उर्जा भरने की। शब्दशक्ति को जागृत कर सकता है किसी एक बुद्धपुरुष का वचन। हम मरने जा रहे हो और जिंदा नहीं कर देते? पंथ लिया हो कि आत्मघात कर लेना है, नहीं जीना है और किसी के दो वचन या किसी के द्वारा संदेश मिल जाए कि ऐसा कहा है कि ऐसे नहीं करते। और मनुष्य जीवित रह जाए। शब्द शक्ति की पहली जुगति है। दूसरा, स्पर्श शक्ति को जागृत कर पाए। स्पर्श से कुंडलिनी जागृत हो ऐसी विद्या हमारे यहां नहीं है? हमारा वो पंथ नहीं। हमको उसमें मालूम न हो कि कैसे समझना है! मुझे समझना भी नहीं। किन्तु कुछ जगहों में ऐसे मर्मस्थान आए, उसकी उर्जा सारी फट के बाहर निकल जाए। स्पर्श शक्ति को जाग्रत करने का कार्य करता है। और तीसरा, किसी की दृष्टि से शक्ति जाग्रत होती है। वो हमारे सामने देखे तभी हमारे में कुछ नया-नया प्रकट होने लगे, शक्ति जाग्रत हो। शक्ति को प्रकट करने का चौथा स्थान है किसी भी परमतत्त्व की परम शरणागति। श्रीहनुमानजी जानकी तक वे शक्ति के दर्शन करने के लिए पहुंचते हैं और बाद में आप देखिए, ऐसे तो शक्ति है ही हनुमान में, फिर भी तुलसीदासजी कहते हैं कि हनुमान के शब्दों में कितनी ताकत आ गई! माँ खुद ही बोलती है। माँ बहुत प्रसन्न है।

मन संतोष सुनत कपि बानी।
भगति प्रताप तेज बल सानी।।

सारी शक्ति शब्दों में कैसे आई? श्री हनुमानजी के वचन सुन के माँ को संतोष हुआ। भगवती जानकी की कैसी बानी थी? 'मन संतोष सुनत कपि बानी।' वाणी के चार प्रकार है। शास्त्रों में तो बानी के कितने प्रकार निर्दिष्ट किए गए हैं! परंतु तुलसी का शास्त्र बानी के चार प्रकार को यहां दिखाता है। कोई भी बानी हो उसमें प्रथम लक्षण भक्ति होनी चाहिए। भावपूर्ण बानी होनी चाहिए। 'भगति प्रताप ...' बाणी का दूसरा लक्षण तुलसी ने बताया प्रताप। प्रतापी बानी होनी चाहिए, कमजोर नहीं। तीसरा लक्षण बताया तेज। तेजस्वी, ओजस्वी बानी होनी चाहिए। शब्द का खुद का तेज होता है। और चतुर्थ लक्षण है बलवान बानी। दैहिक बल वाली नहीं, आत्मबलवाली बानी।

तो बाप, व्यासपीठ को, ये मेरे घाट को ऐसा लगता है कि आदिशक्ति तक पहुंचने के ये सब माध्यम है, ये सभी युक्ति है। तो श्री हनुमानजी विभीषण की बात सुनकर फिर से वो रूप धारण करके वो अशोकवाटिका में गए। वो कौन-सा रूप? इससे पहले तो हनुमान ब्राह्मण के रूप में थे। 'बिप्र रूप धरि बचन सुनावा।' इससे पहले जब लंका में प्रवेश करते हैं तब, 'मसक समान रूप कपि धरी।' फिर उनके पीछे ऐसे खिस जाए तो 'किष्किन्धाकांड' में 'विप्र रूप धरि कपि तह गयउ।' फिर वापस 'सुन्दरकांड' में आए तो, 'अति लघु रूप पवनसुत...' सुरसा के सामने फ़िर छोटे हो जाए। तो यहां जानकी के पास विभीषण मार्गदर्शन के बाद जब गए तब 'सोई' रूप धारण किया। ये 'सोई' क्या? दो शे'र आपको कहूं। खलील धनतेजवी की गज़ल के दो शे'र है। आप सुनना। आपको बल प्राप्त होगा। शक्ति तक पहुंचोगे। प्रथम शे'र में तो अलग पद्धति की बात है। खलील साहब कहते हैं कि -

आप छो भाषा-भवनना मास्तर,
लो, जरा टहुकानो तरजूमो करो.

इनका अनुवाद नहि होता। सुन के ही आनंद प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि उनके जैसा कहकना हमारे से नहीं होगा। परंतु ये दूसरा शे'र, जो अभी बात कर रहा हूं उसके संदर्भ में है -

झेरनो तो प्रश्न क्यां छे, झेर तो हुं पी गयो.
आ बधाने ए ज वांधो छे के हुं जीवी गयो!

ये मौज करते हैं उसकी ही तकलीफ़ है! ज़हर तो पी गया मनुष्य! मीरां पी गई। किन्तु अभी तक जीवित है। तकलीफ़ सबको यही है। शिव पी गए। महादेव पी गए तब भी। तो बाप, कौन-सा रूप धारण किया होगा? अब एक बात बहुत स्पष्ट कर दूं आपके पास। 'हनुमानचालीसा' में जो चौपाई आती है उनका संदर्भ 'सुन्दरकांड' नहीं है। यद्यपि 'हनुमानचालीसा' मेरी व्यक्तिगत श्रद्धा में 'सुन्दरकांड' का भाष्य है। यस, एग्री, किन्तु कुछ पंक्तियां उनके संदर्भ में नहीं है। 'सुन्दरकांड' में जानकीजी ने पांच आशीर्वाद दिए वो भिन्न है। 'आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना।' जानकीजी हनुमानजी को पहचान गए कि ये रामप्रिय है। राम का प्रेमी है या तो राम उसको प्रेम करते हैं। जिसको राम गले लगाए, जिनके सर पर राम का हाथ हो, जिसको राम बुलाए, जिसको राम अपने पास बिठाए। इतने चार फायदे हनुमान को जो मिले सारे 'रामचरित मानस' में, वो हनुमानजी राम को प्रिय है। राम उनको प्रेम करते हैं इसीलिए जानकीजी रामप्रिय हनुमान को आशिष देते हैं। अब आशीर्वाद की गिनती करो।

होहु तात बल सील निधाना।

पहला आशीर्वाद हनुमान को दिया माँ ने कि बलवान बनो। बहुत सोच-समझकर आशीर्वाद दिया है। क्योंकि मनुष्य बलवान हो जाए, परंतु शीलवान न हो तो बल का कोई उपयोग नहीं। अर्जुन जितना ही कर्ण भी बलवान है। शायद, तलगाजरडा के तराजू पे तोलें तो कर्ण थोड़ा ज्यादा वजनदार लगता है। मुझे मेरा तराजू है। जो थोड़ा-सा भारी है। और भारी है इसीलिए अर्जुन को भी भारी पड़ता है। शस्त्रपरीक्षण में जब अर्जुन ने जो खेल बताया तब भी द्रोण तो बहुत खुश होते हैं। उनका तो पूरा पक्षपात है अर्जुन की ओर किन्तु उस समय परदे में बैठी हुई माँ कुंती जैसे-जैसे अर्जुन खेलता है वैसे-वैसे मैदान में कुंता उतनी ही खुश होती है। आशीर्वाद का प्रवाह बहाती है। देखती रहती है और ऐसे भाव जगते हैं। इतना ही भाव वापस कर्ण ने जब पट्टाबाजी की तब जगा है। मुझे कहने दो, अर्जुन की पट्टाबाजी के समय कुंती की आंखो में आंसू आये है किन्तु वक्ष में से दूध नहीं निकला। कर्ण ने किया तब दूध निकला। दमदार है लड़का! बलवान है! बल के तराजू पे तोल अर्जुन और कर्ण के बल को तो मेरी जिम्मेदारी से मुझे ऐसा लगे, कर्ण भारी है। कुंडल और कवच दोनों चीजों को ले ली तब भी वजन कम नहीं हुआ। परंतु समझकर बेवकूफ़ बना और इसलिए खुद का वजन बढ़ा। समझकर बेवकूफी करेगा उसका वजन बढ़ेगा। और दूसरों को बेवकूफ़ बनाने जायेगा वो कितना ही वजनदार होगा, शायद आधा वजन उसका कम हो जाएगा! तो बल की तुलना में अर्जुन और कर्ण उसको तराजू में रखे और न्यायोचित दृष्टि से पक्षपातमुक्त दृष्टि से देखें तो कर्ण का वजन ज्यादा है। दोनों का बल समान है, परंतु फिर भी कर्ण का बल मेरी दृष्टि से थोड़ा-सा ज्यादा है। फिर भी वो मनुष्य कहीं-कहीं जो टूटा है उसका कारण कुसंग के कारण उसका चरित्र का हनन हुआ है। द्रौपदी के चीरहरण के वक्त थोड़ा-सा बानी का शील नष्ट हुआ है। लेकिन उजाले का बेटा है साहब! उसमें तो ना कैसे कहा जाए? माँ जानकी को पता है कि सिर्फ़ बल का आशीर्वाद दूं और जो शील ही न हो तो बल दूसरे ही रास्ते पे चला जाएगा। बाप, हनुमान, देह से तू बलवान बनना। आत्मा से तू शीलवान बनना। और फिर -

अजर अमर गुननिधि सुत होहू।
करहुँ बहुत रघुनायक छोहू।।

तीसरा आशीर्वाद दिया, हनुमान, तू अजर होगा बाप! तू कभी बूढ़ा नहीं होगा। चतुर्थ वरदान दिया, तू अमर रहेगा। और पांचवां वरदान दिया, तू गुणनिधि बनेगा। ये पांचों हो और राम की कृपा प्राप्त न हो तो? और जब कहा, राम का प्यार तुझे मिलेगा -

करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना।
निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।।

मेरे पे राम कृपा करेंगे। ऐसे 'अशोकवाटिका' में हनुमानजी ने जहां सुना वहां 'निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।' निर्भर प्रेम का अर्थ क्या? इतने वरदान मिले और मनुष्य भारी हो जाए परंतु जहां कृपा की बात आए

वहां हल्का फूल जैसा हो गया कि इसमें मेरा कुछ नहीं। ये तो कृपा के कारण है इसीलिए बिना भार हो गया। प्रश्न कहां है कि हनुमानजी ने इतने सारे रूप लिए ये इस वरदान में कहीं भी है ही नहीं। 'हनुमानचालीसा' में है।

सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा।
बिकट रूप धरि लंक जलावा।।
भीम रूप धरि असुर संहारे।
रामचंद्र के काज संवारे।।

यहां 'रामायण' के चरित्र में ये रूप, ये रूप, ये रूप सभी है। कही बड़े, कही छोटे। अभी वो सभी रूप जो हनुमानजी ने लिए वो सब सिद्धि के प्रयोग है। वो वरदान भी जानकी ने ही दिया है। किन्तु रामकथा में नहीं दिया, 'हनुमानचालीसा' में दिया है -

अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता।
अस बर दीन्ह जानकी माता।।

हे हनुमान, तेरे में आठ सिद्धि और नव निधि बसेगी। 'मानस' का ये आशीर्वाद नहीं। 'मानस' के आशीर्वाद होते तो 'सुन्दरकांड' के बाद ये सब रूप धारण कर देते, छोटा होना, बड़ा होना। ये तो शुरू से ही होते है। इसीलिए ये वरदान तो पहले से ही दिये है। 'सुन्दरकांड' की यात्रा में बहुत से रूप इन्होंने लिए। उसमें लंका में जब उन्होंने प्रवेश किया तब उन्होंने जो मुख्य रूप लिया वो था -

मसक समान रूप कपि धरी।

मच्छर जितने हो गए थे हनुमानजी। मसक का अर्थ कुछ लोग बिल्ली करते हैं, किन्तु तुलसीदासजी के शब्दप्रयोग में जहां भी 'मसक' शब्द आता है वहां मच्छर ही अर्थ है। ऋतु वर्णन में भी 'मसक' शब्द मच्छर के रूप में ही 'मानस' के शब्दकोश में प्रयुक्त हुआ है। ये 'रामचरित मानस' तो त्रिभुवन की एन्साइक्लोपीड़िया है। इसके सभी अर्थ विधविध संदर्भ में अलग-अलग है साहब! यहां पे तो श्री हनुमानजी महाराज लंका में प्रवेश करते हैं तब मच्छर जितने यानी अति लघुरूप, सूक्ष्मरूप, छोटा रूप धारण करते हैं उस अर्थ में है। बाद में लंका में गए तब भी सभी जगह यही रूप में घूमते हैं, परंतु विभीषण के आंगन में गए तब -

विप्र रूप धरि बचन सुनाए।

ब्राह्मण रूप में प्रकट हुए हैं। वो भी कम समय के लिए ही ब्राह्मण के रूप में रहे हैं। देखो, विभीषण और दोनों का परिचय तभी तो खुद कह देते हैं कि -

कपि चंचल सबहीं बिधि हीना।

मैं वानर हूं तुम देखो। वानर के रूप में प्रकट हुए हैं। भक्त और भक्ति के सामने ज्यादा वेश बदलने नहीं चाहिए। प्रकट हो जाना चाहिए। वही ब्राह्मण में से वापस अपने मूल रूप में प्रकटते हैं। इसलिए विभीषण के आंगन में दो रूप प्रकट करते हैं। एक तो ब्राह्मणरूप और दूसरा फ़िर वानर के रूप में। अब विभीषण ने युक्ति बताई कि अब तुम जाओ। वो गये तब ये शब्द आया -

कपि चंचल सबहीं बिधि हीना।

पुनः वही रूप लेके वहां गए जहां सीता थी। वो 'सोई' रूप वही मसक रूप है। इस तरह वो लंका को बताना चाहते हैं कि वो चोर नहीं है। चोर शोर न मचाए। चोर गाना गाते-गाते किसी के घर में नहीं आते। और ये मच्छर बन के शोर करता हुआ 'श्री राम जय राम जय जय राम...' उसने शोर शुरू किया, इसलिए लंकिनी ने जो चोर का आक्षेप किया था वो निराधार कर दिया कि मैं चोर नहीं हूं। चोर कभी गाते-गाते थोड़े आता है? वो तो चूपके-चूपके आता है। और सारी दुनिया में बड़े से बड़ा चोर लंकिनी, तेरे देश का प्रधान है। ये रावण खुद ही बड़े से बड़ा चोर है! उसकी तुम सेविका बनी हो और राम के दूत को चोर कहती है? मैं मच्छर के समान बनके अपना दासत्व प्रकट करता हूं, किन्तु किसी को बेवकूफ नहीं बनाता। हम किसी के घर में जाते हैं तो गाते-गाते जाते हैं। गुनगुनाते हुए जाते हैं। उसको 'अशोकवाटिका' में चूपके से नहीं जाना। चोरी करने नहीं जाना। किन्तु चोरी हुए माल को ढूंढने जाना है। खोई हुई मेरे देश की संपदा, मेरे देश की शक्ति, प्रतिभा ये रावण चाहे परछाई के रूप में थी, परंतु चोरी करके आया है। उसी प्रतिभा की खोज में हनुमानजी गाते-गाते आये हैं। ये साधु-संत

पादुका क्यों पहनते हैं? पादुका की आवाज़ हो, चप्पल की बहुत आवाज़ नहीं होती। और स्लीपर की तो होती ही नहीं। पादुका की आवाज़ हो इसका मतलब ये कि साधु कहीं पे भी जाए उनके चरण की आवाज़ होती हो। वह चूपके से छूपी तरह से ना जाए। उसकी आवाज़ की झनकार है। तो मच्छर जितना बन के गए हैं। वो फिर से मसक के समान छोटे बन गए हैं। निराभिमानी होकर गए हैं। मत्सर यानी एक तरह का व्यर्थ अहंकार। रूप मच्छर का, वृत्ति मत्सरमुक्त। इस तरह हनुमानजी गए हैं और जो भक्ति को पाना चाहता है उनको तो निराभिमानी वृत्ति ही रखनी पड़ेगी।

अशोक नाम के वृक्ष के नीचे रावण ही अपहरण करके वहां सीताजी को रखके गया है। उसको भी शायद पता है कि जानकी अग्नि में समा गई है। किन्तु जहां तक वो मेरे यहां रहे तभी तो उसको दुःख-दर्द नहीं होना चाहिए। इसीलिए अशोक नामक वृक्ष के नीचे माँ जानकी बैठी है। श्रीहनुमानजी वही रूप में वहां प्रवेश करते हैं। और वाटिका में घूमते हुए जिस तरह उन्होंने जानकीजी को देखा तभी अंदाजा लगा लिया कि यही भक्ति होनी चाहिए -

कृस तनु सीस जटा एक बेनी।

रघुवीर नाम का अखंड जप चल रहा है। शरीर कृश हो गया है माता का। सिर के बाल एक जटा की तरह बंध गए हैं। अंदाजन खयाल आया कि ये भक्ति होनी चाहिए। अभी सीता का जो रूप दिखाया गया है वहां वे सब भक्ति के लक्षण है। सच्ची भक्ति करते हो वो दूबले ही होते हैं। उनमें ज्यादातर इतनी स्थूलता नहीं होती, सूक्ष्मता होती है। पकी हुई भक्ति तो दूबली ही होती है। और भक्ति इसलिए दूबली है कि उसको चिंता नहीं है। वजन स्थूलता के अर्थ में कह रहा हूं। इसका अर्थ कोई ये न कर दे कि जो दूबला हो, वो दीन हो। और भक्ति इसलिए दूबली है कि उसको चिंता नहीं है। वजन स्थूलता के अर्थ में कह रहा हूं। यद्यपि ये दूबला हो, जीन हो।

भक्ति करवी एने रांक थईने रे'वुं...

तो, भक्ति का एक लक्षण दयनीय, दीनता के अर्थ में है। दूसरा, माता जो रोटी बनाती तो उसमें तीन लटों को लेती है न? मगर इनकी तीन जटा नहीं है। एक जटा है। अब उनको ज्ञान, कर्म या भक्ति इसका कोई भेद नहीं रहा। हम ज्ञानमार्गी और आप उपासना और कर्ममार्ग पे चलनेवाले, ऐसी अलगता भरी लटें भक्ति में नहीं होती। वो सब तो एकता बनाए रखती है। और भक्ति का आगे का लक्षण -

जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी।

चिल्ला के नहीं बोलते 'राम... राम... राम!' जानकीजी भी होठों से 'राम राम' नहीं बोलती। गुणश्रेणी का जप माँ करती है। उसके भरोसे माँ जीवित रही है। हनुमानजी ने ठीक से देखा कि माँ कैसे बैठी है? खुद की दृष्टि खुद के पैरों के तलवों पर रखी है। जानकी के नेत्र खुद के पैरों पे ही घूम रहे हैं। जो भक्त है वो जहां-तहां नज़र नहीं घूमाते। तो नज़र कहीं पे तो नज़र रखी जाए इसी वजह से पेरों के तलवों पर टीका रखी है। आज राम के चरण तो उनके पास मौजूद नहीं है, इसीलिए खुद के पैरों के तलवों में रहे हुए राम के चरणचिन्हों को माता याद कर रही है। पैरों के तलवों को डांटती हुई माँ कहती है कि तुझको क्यों ये विचार आया कि स्वर्णमृग को मारने के लिए राम को भेजा? पैर का तलवा यानी गति का एक विचार। दूसरे इसका बहुत सीधा-सरल अर्थ भक्ति करते हैं। उन्होंने दूसरों के चरण नहीं किन्तु खुद के पैरों के तलवे कैसे हैं उसका ध्यान रखना चाहिए। हम किसी की नकल तो नहीं करते; हमको हमारी चाल की गति होनी चाहिए साहब! बाप, भक्ति सदा खुद के पैरों के निशां को देखती है, दूसरों के पैरों को नहीं। उनका मन राम के चरणों में रख दिया है। नेत्र अपने चरणों में। हमको हमारी दृष्टि खुद के आचरण पे रखनी चाहिए और मन राम के स्मरण में रखना चाहिए। यानी मन वहां हनुमानजी अशोकवृक्ष के एक पत्ते के पीछे छिपे हैं। असमंजस की स्थिति में है। माँ को देखकर वो चिंतित है। प्रकट होने का मौका ढूंढते है कि क्या करे? और उसी वक्त वहां रावण मंदोदरी आदि रानीओं के साथ आता है। ठाठ-पाठ से आता है। रावण को आता देख हनुमानजी को लगा कि अभी प्रकट होने का समय नहीं है। जरा देख लूं कि ये मनुष्य मेरी माता के

साथ कैसा व्यवहार करता है? क्या बोलता है? क्योंकि हनुमान ने सोते हुए रावण को देखा था, जागे हुए रावण को नहीं देखा। सोते हुए अलग दिखते हैं, जाग्रत हुए अलग दिखते हैं। मोहनिशा में सोये हुए भिन्न दिखता हो और जिसको गुरुकृपा से जागृति आयी वो भी अलग होता है। यही जाग्रत रावण है और हनुमानजी को लगा कि मैंने उसको सोया हुआ देखा था पर ये सच्चा जाग्रत है, क्योंकि ये मेरी माँ को मिलने आया तब अकेला नहीं आया। उसकी रानियों को साथ ले आया है।

श्री हनुमानजी की विलक्षण दृष्टि इस मनुष्य का अभ्यास कर रही है और बाद में रावण प्रलोभन देता है सीताजी को कि मंदोदरी जैसी मेरी कितनी ही रानियों को मैं दासी बना दूं तुम्हारी जानकी। तुम सिर्फ़ एक बार मेरी और देखो। हनुमानजी उपर है। रावण के सामने बात करती इस जनकदुलारी, विदेहतनया उस जानकीजी पराम्बा ने यहां तृण घास की ओट की। रावण समझ गया कि क्या कहना चाहती है। जानकीजी ने कहा कि रावण, तू मुझे कह रहा है कि ये मंदोदरी आदि रानियों को तेरी दासी, सेविका, गुलाम बना दूं, परंतु रावण, तुम्हारी ये सारी समृद्धि मेरे लिए तिनके बराबर है। और भक्ति करनेवाला तो घास के तिनके जैसा होता है। जानकीजी कहती है कि तुम चाहे उतना तूफ़ान ले के आए होंगे, परंतु हम तो घास की तरह झूके हुए ही रहेंगे। हमें कोई निर्मूल नहीं कर पायेगा। रावण ज्यादा गुस्से में आ गया। जब रावण प्रहार करने लगता है तब मंदोदरी उसे रोकती है। साहब, भजन सच्चा होता है, तो हमारी विरुद्ध हमें मारने के लिए कोई तैयार हुआ हो उसी के ही घर का व्यक्ति हमारे पक्ष में आ जाए। तब विरोधी ही सहायक बन जाता है। मंदोदरी ने कहा, आप नारी हत्या नहीं कर सकते। बाद में रावण ने कहा कि मैं एक महिने का समय देता हूं। यदि एक महिने में मेरा कहा आप नहीं मानी तो मैं इस कठिन क्रिपाण से आपका शिरच्छेद कर दूंगा। और जानकीजी जब बहुत ही विरह व्याकुल बन जाती है तब हनुमानजी राम के नाम से अंकित मुद्रा को फेंकते हैं। जैसे अशोकवृक्ष ने अंगार दिया हो ऐसा मानकर जानकी मुद्रिका को खुद के हाथ में पकड़ लेती है। राम नाम से अंकित मुद्रिका है। पहचान होती है। ये बात अब कल आगे ले जाएंगे। आज बचे हुए समय में मैं रामजन्म की कथा गा दूं।

भगवान शंकर को पार्वती ने कैलास पे जिज्ञासा करते हुए कहा कि क्या है ये रामतत्त्व? भगवान शंकर उनके उत्तर में भूमिका बांधते हुए कहते हैं कि देवी, ईश्वर व्यापक में से व्यक्ति बना इसका कोई भी कारण इदमित्थ नहीं है क्योंकि कार्य-कारण का सिद्धांत तो जगत को लागू पड़ता है, जगदीश्वर को नहीं। राम अवतार क्यों हुआ देवी, इसके पांच कारण है। प्रथम कारण जय-विजय का बताया। दूसरा सतीवृंदा का बताया। तीसरा कारण नारदजी ने भगवान नारायण को शाप दिया और प्रभु ने मानव देह धारण किया था उसे बताया। चौथा कारण स्वयंभू मनु और शतरूपा की तपस्या का वर्णन को बताया है। पांचवा और अंतिम कारण 'मानस' के अंतर्गत राजा प्रतापभानु की कथा है। वही प्रतापभानु रावण बन गया। दूसरे जन्म में अरिमर्दन कुंभकर्ण बन गया। धर्मरुचि नाम का उनका प्रधानमंत्री वो रामकाल में दूसरी माता के पेट से विभीषण हो के जन्मा। तीनों भाइयों के जन्म की कथा 'मानस' में प्रथम लिखी गई। निशिचर वंश की, अंधेरे की कथा पहले लिखी गई। और पहले तो अंधकार ही होता है, बाद में सूर्य उगता है और सुबह होती है। बाद में सूर्यवंश की कथा लिखी गई।

ज़िंदगी शम्मा की मानिंद जलाऊंगा 'नदीम',
चराग हूं, बुझ तो जाऊंगा लेकिन सुबह करके जाउंगा।

ये रावण, कुंभकर्ण और विभीषण ने बहुत तप किया। और बहुत बड़े-बड़े वरदान प्राप्त किए। वरदान प्राप्त करते ही रावण सिद्धियों का दुरुपयोग करने लगा। सारा जगत भ्रष्टाचार से घिर गया। पृथ्वी परेशान हुई। गाय का रूप धारण किया। सबसे पहली पीड़ा गाय को हुई है। गाय की सेवा के लिए आयोजित ये रामकथा गौमाता के स्मरण में चल रही है। तभी सनातन धर्मावलंबी हम वेद की संतान, हम सब अमृत की संतान

गौमाता की रक्षा के लिए जरा गंभीर हो जाए। गाय की पूजा न करे तो कुछ नहीं किन्तु गाय को प्रेम करे। क्योंकि पूजा तो चार आने में निपट जाती है, लेकिन प्रेम में तो जिंदगी देनी पड़ती है। साधु-संस्थाएं गाय की सेवा के कार्य बहुत समय से करते रहे हैं और अभी भी करते हैं। पृथ्वी गाय का रूप लेकर ऋषिमुनियों और देवताओं के पास गई। सब ने कहा कि हम ब्रह्मा के पास जाए और ब्रह्माजी कोई उपाय सुझाए। अभी एक ही उपाय है कि हम समी परमतत्त्व के शरण में जाए। और अब भगवान की शरण में आते हैं। देवस्तुति हुई है। आकाशवाणी हुई, 'धैर्य धारण करो, मैं धरती पर अवतार लूंगा।' देवता राजी हो गए।

महाराज दशरथजी का परिचय कराया। उनमें भक्ति-ज्ञान-कर्म-योग का समन्वय है। कौशल्यादि प्रिय रानियां है। सभी के आचरण पवित्र है। सभी प्रकार की समृद्धि है। परंतु पुत्रसुख नहीं है। उम्र ढलती है। दुनिया को कोई भी परेशानी हो तो राजा के पास जाय। फ़रियाद करने का ठिकाना राजसत्ता है। परंतु जब राजसत्ता ही तकलीफ़ में हो तो किसके पास जाना? अत: अपनी सभ्यता मार्गदर्शन करे कि जब किसी से बात न कर सके तो गुरुद्वार जाना चाहिए। अत: वे गुरुद्वार गए है। वशिष्ठ महाराज के पास जिज्ञासा की है। वशिष्ठजी ने प्रसन्नचित्त से कहा, राजन्, आपके यहां ब्रह्म बालक बनकर आयेंगे। थोड़ा धैर्य धारण कीजिए। चार पुत्रों की प्राप्ति होगी। पुत्रकामेष्टि यज्ञ कराया है। भक्ति सहित आहुति दी है। यज्ञदेवता गर्भगृह में से यज्ञप्रभुप्रसाद का चरु लेकर प्रकट हुए हैं। प्रसाद की खीर वशिष्ठ के हाथ में दी है। दशरथ के हाथ में खीर का चरु है। प्रिय रानियां आई। आधा प्रसाद कौशल्याजी को दिया। पाव भाग का प्रसाद कैकेयीजी को दिया कैकेयी और कौशल्या के हाथों पाव भाग जो बचा था उसके दो हिस्से कर सुमित्रा को दिया। तीनों रानियां सगर्भावस्था स्थिति का अनुभव करती है।

हरि के आने का समय हुआ है। रानियों को मंगल शगुन होने लगते हैं। परमात्मा की गर्भस्तुतियां शुरू हुई है। समस्त ब्रह्मांड जिनका निवास है ऐसे परमात्मा माँ कौशल्या के महल में प्रकट होते हैं। कृपालु प्रकट हुए। संतों से सुना है कि माने मुख फेर लिया। ठाकोरजी ने पूछा, क्यों मुख फेर लिया? माँ ने कहा, 'आप आए, आपका स्वागत।' पर आपने वचनचूक किया है। आपने पिछले जन्म में हमें वचन दिया था कि मैं आपके यहां मनुरूप में आऊंगा। आज आप नररूप में नहीं आए हैं, नारायण रूप में आए हैं। आज पुत्र बनकर नहीं, पिता के रूप में आए हैं। 'माँ, मैं वचन चूका? मैं नर नहीं लगता? कहा, नहीं। नर को चार हाथ नहीं होते। मुझे दो हाथ का ईश्वर चाहिए। प्रभु शिशु बन गए। कहा, 'अब तो शिशु बन गया।' 'अब शिशु तो बने पर बातें बड़ों जैसी करते हो! शिशु को तो रोना चाहिए।' कौशल्या की गोद में आकर रोने लगे। ब्रह्म शिशुरूप में प्रकट हुए है। भगवान के रोने की आवाज़ सुनकर भ्रम में रानियां दौड़ आई! यह भ्रम है कि ब्रह्म है! इसका निराकरण तो गुरु ही कर सके। गुरु ने आकर भ्रम का निरसन किया। राजा को परमानंद हुआ कि जिनका नाम लेने से शुभ हो वही परमात्मा है। ऐसे हरि मेरे यहां प्रकट हुए हैं। दशरथजी ने बधाई शुरू कराई। यह व्यासपीठ पर से आप सबको रामजन्म की बधाई हो।

जनकराजा की पुष्पवाटिका फूलवाडी नाम को सार्थक करती है। वहां फूल ही है, फल नहीं है। और रावण की अशोकवाटिका की करुणता यह है कि वहां फल ही है, फूल नहीं है। दोनों वाटिका के संदर्भ बहुत अलग है; रहस्यपूर्ण है। हमारे जैसे लोग देहनगर की पुष्पवाटिका में खाली फल ही देखते हैं, फूल देखते ही नहीं। हमें फल ही चाहिए। धर्म का या तो अर्थ का फल चाहिए। काम का या तो मोक्ष का फल चाहिए। जीवन की खुशबू किसे चाहिए? 'रामायण' रस की बात करता है, खुशबू की बात करता है।

'अशोकवाटिका' में जति भी है और सती भी है

'मानस-अशोकवाटिका', को मध्य में रखकर हम साथ मिलकर संवाद के रूप में थोड़ा सात्त्विक-तात्त्विक दर्शन कर रहे हैं। थोड़ा आगे बढ़ें। अशोकवाटिका लंका में है। आपकी शुभकामना से यह ग्रंथ लेकर विश्व में घूमता हूं उस ग्रंथ में लंका चार रूप में मिलती है। कथा के केन्द्र में रही अशोकवाटिका को चार दृष्टि से देखें। एक उसका स्थूलरूप है। लंका एक भूमि, एक जमीन का टुकड़ा है, जिसमें रावण की नगरी है। सोने का किल्ला है। दो मत है। किल्ला सोने का है पर अंदर के घर सोने के नहीं है। लंका का मूल स्वरूप भिन्न है। उपनिषद में कहा गया है कि सत्य सुवर्ण से ढंका है। यह उपनिषद का सूत्र हम जानते हैं। कभी बाह्याडंबर से, कभी रजोगुणी प्रवृत्ति से, कभी अपने पुरषार्थ, प्रारब्ध या बौद्धिक कौशल्य से प्राप्त पद-प्रतिष्ठा से ढंका होता है। तुलसी की दृष्टि से लंका के घर सुवर्ण के नहीं है। हम यह अर्थ जरूर कर सके कि पूरी लंका सोने की है। पर यह रहस्य है। 'मानस'कार ने लंका का एक रूप जो सामने रखा है वह स्थूल रूप है। ऐसे स्थूल रूप को दिखाने तुलसी ने हनुमानजी की आंख में पूरी लंका छंदोबद्ध चित्रित की है। यहां अछांदस नहीं है। हनुमान गुरु है और गुरी की आंख में लंका का जो दर्शन हुआ है यह स्थूल दृष्टिकोण है। शांति से, गुरुकृपा से विचार कीजिए तो-

कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना।

अब यहां 'कनककोट' का उल्लेख है। केवल किल्ला सोने का है। अंदर के मकान तो 'सुंदरायतन' है। आदमी सुवर्ण से नहीं, सत्य से सुंदर दिखता है। यह 'सुन्दरकांड' क्यों है? अंदर के मकानों को गोस्वामीजी 'सुंदरायतन' कहते हैं। फिर कहते हैं 'घना', काफी, बेहद मकान है। चित्र-विचित्र है। तुलसी सब को मंदिर कहते हैं। 'चऊहट्ट'; हट्ट माने दुकान। छंद का एक-एक शब्द महत्त्वपूर्ण है। सुंदर हाट लगे हैं। 'बट्ट' का अर्थ है बाट; कहीं फोरलाईन, कहीं सिक्सलाईन, कहीं दो लाईन। ऐसे रास्ते चारों ओर है। चार प्रकार की सेना है।

गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।

मानों चार प्रकार की चतुरंगिनी सेना लंका में निवास करती है। लंका बहुत सुंदर है। उसके अंदर 'नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं।' मनुष्यजाति की कन्यायें भी वहां है। गंधर्व कन्या है। 'सुंदरायतन' में सभी सुंदर है। लिखा है, ऐसी स्त्रियां रूपवती है कि मुनियों का मन भी मोहित हो जाय। लंका में कोई मुनि नहीं है। तो कौन से मुनि का मन मोहित होता है यहां? हां, एक है वह कालनेमि जो कपटमुनि हुआ है। बाकी यहां कोई मुनि नहीं रहता है। हां, विभीषण जैसे सज्जन, साधु, वैष्णव रहते हैं। पर तुलसीदासजी सचेत रह कर लिख रहे हैं। हनुमानजी सुंदर पहाड पर चढ़कर लंकादर्शन करते हैं। लंका में प्रवेश करते समय तुलसीजी हनुमानजी को देखे, लंका को देखे और लेखिनी चलाए तो लिखे 'मुनि मन मोहहीं।' आज पहली बार एक मुनि लंका में प्रवेश कर रहा है और वह हनुमान है। ध्यान दीजिए, हनुमान मुनि है। 'मुनि उत्तमा', मुनियों में भी उत्तम ऐसे हनुमान लंका में प्रवेश करते हैं।

जैन परंपरा में रावण को मुनि बताया है। सब को अपने अलग-अलग 'रामायण' है। हर एक का अपना रावण होता है। एक वस्तु याद रखिए बाप! रावण शरीर से द्रोही है, मन से नहीं। ईसलिए मुनि है। हम शरीर से स्त्री का स्पर्श करे तो उपवास रखना पड़े। पर तेरा मन द्रोही है इसका क्या? तेरा चेहरा सोने से ढंका है इसका क्या? 'महाभारत' और 'रामायण' के काल में अच्छा काल 'रामायण' का है। 'महाभारत' काल में हिमालय और आकाश को सहारा दे ऐसे

महापुरुष बिराजमान हैं फिर भी एकवस्त्री याज्ञसेनी के वस्त्र को खींचने का निर्लज्ज प्रयास हुआ। साहब, 'रामायण' में ऐसा नहीं हुआ है। वहां मानवीय दुर्वृत्तियों का अपहरण हुआ है। 'मानस' मुझे ऐसा बोलने के लिए प्रेरित करता है कि जो आदमी मनद्रोही हो वो किसी दिन अशंक नहीं हो सकता। ऐसा 'मानस' का सूत्र है। दूसरों का द्रोह करनेवाला क्या कभी नि:शंक हो सकता है? सामने लंका है और उसमें अशंक रावण बैठा है। परद्रोही अशंक नहीं होता। ऐसा उसकी पत्नी कहती है। संपाति दीर्घदृष्टा है। उसने कहा, 'तह रह रावण सहज असंका।' इस पर से साधार कहने की इच्छा होती है कि रावण का द्रोह शरीर द्वारा था, मन द्वारा नहीं था। मन द्वारा जो द्रोह न करे उसका नाम मुनि है। शरीर से तो हम दूसरों का द्रोह नहीं कर सकते। समाज का डर लगता है। सम्यता रोकती है। बाप-दादा याद आते हैं और कभी माँ जिसका दूध पिया है सब याद आयेंगे। रावण को मुनि मानो तो धारणा अनुसार ऐसी सुंदर-सुंदर स्त्रीयां मुनियों का मन मोहित करे ऐसा नगर! यह इसका स्थूल रूप है। या तो उत्तम मुनि हनुमानजी प्रवेश करते हैं। यह लंका का स्थूल वर्णन है-

बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।

लंका में सरोवर, कुएं, वाव, कूप है, ऐसा वर्णन तुलसी करते हैं, 'बन बाग उपबन बाटिका।' ये केवल और केवल 'अशोकवाटिका' के लिए प्रयुक्त चार शब्द है। लंका के चार रूप समझ लें तो भीतर की 'अशोकवाटिका' के चार लक्षण समझ में आ जाय। इसीलिए तुलसी द्वारा प्रयुक्त एक ही स्थान के संदर्भभेद-अर्थभेद के ये चार नाम है। यह वाटिका भी है, बाग भी है, वन भी है और उपवन भी है। लंका का पहला रूप स्थूल है, दूसरा रूप एक नारी का है।

नाम लंकिनी एक निसिचरी।
सो कह चलेसि मोहि निंदरी।।

एक नारी का रूप है। लंकिनी नामक एक राक्षसी है, ऐसा 'रामायण' ज्ञाताओं से सुना है। लंकानगरी जो रात को नारीरूप धारण कर स्वयं का रक्षण करती थी। यह लंका स्वयं एक नारी है। एक पंचभौतिक स्त्री के रूप में लंका है। बाप! दूसरा रूप स्त्री का है। तीसरा योगरूपी लंका का है। अब जो कहता हूं वो किसी महापुरुष के विचार है। हनुमानजी इस किनारे से लंका में प्रवेश के लिए छलांग लगाते हैं। वहां से जानकी का परिचय लेकर, माँ के आशीर्वाद के साथ लौटते हैं। इन सभी घटनाओं का लंका का वर्णन योगपरक हुआ है। सहस्त्र घाट पर जानकी मिलती है। अर्थपूर्ण चौपाईयों में आधारसह योग परक रूप दिखाया है। तब हमें लगे कि 'मानस' कितना बडा खजाना है। 'बड़ा' शब्द भी छोटा लगता है। ऐसा खजाना हमें निमंत्रण देता है कि चलो हरिहर करने। आपकी भूख अनुसार खाकर चले जाईए। अत: किसी-किसी संत ने लंका का वर्णन योगदृष्टि से किया है। उन सभी महापुरुषों को व्यासपीठ से मेरे प्रणाम।

चौथा रूप लंका का अध्यात्मरूप है। इसके लिए 'विनयपत्रिका' का पूरा पद पढ़ना पड़े। आपको सिर्फ़ संकेत देता हूं कि जरूर पढ़ियेगा जिसमें पूरी लंका का वर्णन अध्यात्मपरक है। इसमें कहा गया है कि मनुष्य का शरीर ब्रह्मांड है। उसमें हमारी अनेक प्रकार की प्रवृत्ति लंका है। उसमें मोहरूपी रावण बैठा है। कामरूपी इन्द्रजित बैठा है। अहंकाररूपी कुंभकर्ण है। राग है, द्वेष है। लंका का किल्ला क्या है? उसके चारों ओर जो खाई है वह क्या है? ये सभी अर्थ तुलसीजी ने 'विनयपत्रिका' में दिए हैं। पर ये अर्थ ठीक तरह से समझ में न आए तो रामकिंकरजी महाराज ने जो अध्यात्म अर्थ किए हैं ये कभी पढ़ लीजिए। थोड़ा कठिन लगेगा। आप कहीं पर कुछ बोले तो रामकिंकरजी महाराज का नाम बताईयेगा जिससे अपनी ईमानदारी बरकरार रहे। साहब, कितनी ही विभूतियों ने 'रामायण' पर काम किया है। प्रणाम करता हूं। लंका के चार रूप है- अध्यात्मरूप, स्त्रीरूप, योगदृष्टिरूप और स्थूलरूप। लंका स्थित अशोकवाटिका के भी चार रूप है- वन, उपवन, बाग और बाटिका।

बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं।।

अशोकवाटिका के ये चार रूप है। वन, अशोकवन जो हमारे सामने हैं। गुरुकृपा से लगता है कि यह मन का प्रदेश है। मेरे गोस्वामीजी ने वन को मन कहा है।

दंडकवन प्रभु किन्ह सुहावन।
जन मन अमित नाम किए पावन।।

वन माने घना जंगल। जिसमें व्यवस्था नहीं है। अभी तक मन समझ में नहीं आया, घना ही है! बादशाह जयपुरी का शे'र है-

उलझनों में खूद ऊलझ कर रह गए वो बदनसीब,
जो तेरी ऊलझी हुई झुल्फों को सुलझाने गए।

तो वन यह मन का प्रदेश है, ठीक है?

चलेउ नाई सिर पैठेउ बागा।

बाग बुद्धि प्रदेश है। बाग में लोग घूमते हैं उसी तरह बुद्धि भी घूमती रहती है। एक जगह पर केन्द्रित नहीं। बाग का एक अर्थ आराम है। बुद्धि तय नहीं कर पाती कि मेरा आराम कहां है? बाग बुद्धि का प्रदेश है। उपवन को क्रीडास्थली कहते हैं। विहारस्थली का नाम उपवन है। यह चित्त की भूमि है। चित्त क्रीडा करता है। पतंजलि को तो बस एक ही आग्रह, एक ही निर्णय कि चित्तवृत्ति का निरोध होने पर योगा होता है। बस, हम चित्तविभ्रांत है। संस्कृत विद्वानों ने जिसे दोलाचल चित्तवृत्ति कहा है। झूले जैसी है। स्थिर रहती नहीं। यह हमारी दशा है। वाटिका तमोगुण प्रधान या अहंकार प्रधान वृत्ति का स्थान है। इसीसे अशोकवाटिका में रावण आता है। तमोगुणी है, तमस है। उसे लगता है यह अहंकार की भूमि है। तो 'मानस-अशोकवाटिका' में जानकी जो केन्द्रस्थान पर है इसमें चार प्रकार के दर्शन हम कर सकते हैं।

इस 'अशोकवाटिका' में एक जति भी है, एक सती भी है। अपहृत ये सती का नाम सीता है। एक जति है इनका नाम रावण है। जो दंडकारण्य में, पंचवटी में जति का रूप लेकर आया है। हकीकत में जति नहीं है। संन्यासी नहीं है। जति का रूप लिया है। यहां हकीकत में सती सीता स्वयं नहीं है, परछाई है। दो भ्रम एक-दूसरे के सामने नाचते हैं। पंडित रामकिंकरजी का वक्तव्य है कि शूर्पणखा को राम चाहिए। रावण उसका भाई है उसे सीता चाहिए। दोनों को दो नहीं चाहिए। दोनों को दोनों की चाह होती तो कभी का निर्वाण हो चुका होता। दोंना का हमला एक ही घर पर है। एक पुरुष को स्त्री चाहिए और एक स्त्री को पुरुष चाहिए। रामकिंकरजी कहते हैं, किसी भी स्त्री को राम की प्राप्ति का अधिकार है। निर्वाण पाने का अधिकार है। धर्मक्रिया करने का अधिकार है। तुलसी स्वातंत्र्य देते हैं। पर साधन ठीक न हो तो स्त्री का नाक

कट जाय। परमतत्त्व पर कोई प्रतिबंध नहीं कि पुरुष ही राम को पा सके। एक समय था जब नारी को अधिकार नहीं था। अब परिवर्तन करना पड़ेगा। मुझे बारबार कर्ण याद आता है। यह वर्णबंधन का शिकार बना। नहीं तो कब का मत्स्यवेध कर द्रौपदी से ठाठबाठ से ब्याह कर घर ले आता। पर वर्ण का विघ्न हुआ। अब 'सुतपुत्र' शब्द 'महाभारत' तक ही रहने दे। अब विशाल बनिए। वर्ण से बाहर निकले। व्यवस्था स्वरूप मैं यहां बैठा हूं पर इससे मैं ऊंचा नहीं हूं। आप वहां बैठे हैं तो निम्न नहीं है। यह एक व्यवस्था है, पर भेद नहीं। यह मैंने कई बार कहा है। स्त्री को अधिकार क्यों नहीं है? मेरा तुलसी छूट देता है। नारी भी पा सकती है। ईश्वर को पाने का साधन शुद्ध होना चाहिए। गांधीजी साधनशुद्धि पर भार देते थे। सर्दी में आप कंबल खरीद ओढ़ ले तो सर्दी कम हो जाय। बराबर? पर किसी का ओढ़ा हुआ खींच ले और ओढ़ ले तो सर्दी जाय पर भय न जाय। यह साधन शुद्धि नहीं है। भगतबापू कहते हैं-

झडपेलुं अमी अमर करशे,
पण अभय नहीं आपी शकशे।

किसी से छीना अमृत आपको अमर करेगा पर निर्भय नहीं करेगा। अमरत्व की अपेक्षा निर्भयत्व की महिमा ज्यादा होनी चाहिए। किसी भी बहन-बेटी को राम को पाने का अधिकार हैं। बहनों का अधिकार क्यों नहीं है? मेरी सब को प्रार्थना है कि हर युग में बहनें हुई उनके दर्शन करे। हम जिस युग में हो उसी युग में नारीत्व और नरत्व के आदर्शों क्या हो यह युगानुसार निर्णित होने चाहिए। अभी कलियुग में बहनें सीतारूप हो जाय तो बहुत अच्छा है पर अभी कलियुग में मीरां बनने की जरूरत है। सहजोबाई होने की जरूरत है। दयाबाई बनने की जरूरत है। कलियुग में बहनों को सब अधिकार होने चाहिए। 'रामचरित मानस' ने यही ओलरेडी दिया है। कई ग्रंथ बंधन के साधन बने हैं। कुछ ऐसे ग्रंथ है जिसने मुक्ति के दरवाजे खोल दिए हैं। इसमें सभी को छूट है। इसमें एक सद्ग्रंथ 'रामायण' है।

साधनशुद्धि का अभाव है बाकी शूर्पणखा को अधिकार होना चाहिए। भगवान राम सबके हैं। शूर्पणखा सुंदर बनकर गई। साधन शुद्ध नहीं है। ये पंडित रामकिंकरजी के विचार हैं। मैं सावधान हूं किसीके विचार मेरे नाम के साथ न जुड़े। मुझे डर लगता है क्योंकि उधार के विचार अपने नाम किए हो तो पकड़े जाते हैं। तालियां पाने के लिए भी झूठे निवेदन न करे बाप! सुंदर दर्शन देते हैं यह पंडितजी। स्वयं राक्षसी थी फिर भी नकली सुंदरता का आश्रय लिया। साधन अशुद्ध थे अत: राम को न पा सकी। अपमानित हुई। रावण सीता को पाने गया। उसकी भी साधनशुद्धि नहीं थी। सच्चा जति बनकर गया होता तो सीता को पा लेता। पर नकली बनकर गया।

तो बाप! 'अशोकवाटिका' में जति भी है और सती भी है। ये विचार साधु के हैं। ये कोई पंडित के नहीं है। बैठी हुई जानकी सती है, परम्बा है। जानकी जी परछाई है। साधु भी नकली है। राजा के वेश में अभी तो लंकेश है। तो 'मानस' की वाटिका में एक सती और एक जति है। दूसरी सती मंदोदरी रावण के साथ प्रवेश करती है। रावण की अशोकवाटिका में दो संत है। एक कायम वहां नियत समय पर आता है और एक थोड़े समय के लिए रामकार्य हेतु प्रवेश करता है। हंमेशा नियत समयानुसार आनेवाली का नाम त्रिजटा है। अभी माँ जानकी की खोज के लिए आया संत हनुमान है। अशोकवाटिका में नागपाश का, ब्रह्मास्त्र का बंधन भी है और यहां ऐसा भी है कि हनुमानजी के आने के बाद कई राक्षसों को मुक्तिप्रसाद भी प्राप्त हुआ है। यहां विषैले फल है और मधुर फल भी है। जानकी ने हनुमान को विवेकसह खाने का आग्रह किया है। यहां भूखे बेटो को माँ भरपेट खिलाती है। ये सभी सत्य अनेक रीति से अशोकवाटिका में दिखाई देते हैं। उपवन तो अशोक है। अशोकस्थान में बैठे हुए को कोई सोच नहीं होनी चाहिए। फिर सीता वहां सोच में बैठी है। चिंतातुर है। यहां हमें अनेक द्वन्द्व दिखते हैं।

रावण जानकी को धमकी देता है, प्रलोभन देता है। प्राप्त करने के लिए अनेक प्रलोभन और भय का उपयोग करता है। माँ जानकीजी बहुत दु:खी है। हनुमानजी श्रवण करते हैं। ताक में रहते हैं कि कब बोलूं? क्या करूं? ऐसे अवसर की राह में है। युवा भाईयों और बहनों, आपके लिए तो खास कहूं, हमारे जीवन में समस्याएं तो आती ही है पर भरोसा होगा तो समस्या आए

इसे पहले समाधान ओलरेडी आ चुका होगा। रावण समस्या है, हनुमान समाधान है। अशोकवाटिका में रावण से पहले हनुमानजी ओलरेडी आ जाते हैं। जीवन में समस्या के आने से पहले परमात्मा ने किसी न किसी रूप में समाधान का आयोजन किया है। पर उस समय हम सोच में होते हैं। परिणाम स्वरूप चारों ओर ताकते रहते हैं कि मुझे यहां से, वहां से समाधान मिले पर उपर नहीं देखते! समाधान उपर से उतरता है, ज्यों हनुमानजी वृक्ष से नीचे उतरते हैं। यह क्रम मुझे भी पसंद है। फायदा होता है। पर समाधान आएगा या नहीं? सावधान रहेंगे तो समाधान मिलेगा। समाधान समाधान की जगह पर बैठता है। अध्यात्म जगत में यही एक भरोसा है। एक परम का भरोसा। हमारे भरोसे कितनी ही जगह भटकते हैं! श्रीमद् वल्लभ पर सूरदास का भरोसा, मेरी पसंद का पद-

दृढ इन चरनन केरो भरोसो, दृढ इन चरनन केरो,
श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिन, सब जग मांहे अंधेरो ...

रावण प्रलोभन-भय दिखाकर चला जाता है। सीताजी निज को खाक् करने एक अंगार मांगती है। जानकीजी अत्यंत दु:खी है। हनुमानजी को लगा कि अब प्रकट होने का अवसर है। पहले मुद्रिका दे दूं। सीताजी ने कहा, एक अंगार मिले ताकि भस्म हो जाउं। तभी हाथ उपर किए और हनुमानजी ने मुद्रिका फ़ेंकी। सीताजी को लगा, मेरी प्रार्थना मंजूर हुई! मुझे आकाश ने अग्नि दी। मुद्रिका को स्तब्ध होकर देखती हैं तब लगा कि यह तो मेरी ही मुद्रिका है। यहां कौन लाया? कहां से आई? राम को कोई जीत नहीं सकता और राम को बिना जीते कोई भी मुद्रिका ला नहीं सकता। फ़िर सोचा, यह मायावी है। रावण मायावी है तो मुझे भ्रमित करने के लिए यह मुद्रिका माया से बनाई हो। फिर सोचा यह मुद्रिका माया से तो नहीं बन सकती। माँ ने बहुत सोचा। उस समय हनुमानजी मधुर वचन बोलते हैं। रामचंद्र की कथा शुरू की।

रामचंद्र गुन बरनै लागा।
सुनतहिं सीता कर दुख भागा।।

रामचंद्र के गुण गाने लगे। ये सुनते ही जानकी के दु:ख भागने लगे। भगवान की कथा की महिमा हम अनुभव करते हैं। जब-जब हम ये गुण सुनते हैं तब हमारे दु:ख का कायमी अंत न हो पर उतना समय तो दु:खमुक्त हो जाते हैं। फिर से हमारे दु:ख हमें घेर ले यह अलग बात है। बाकी सुनते समय तो दु:ख चले जाते हैं। हनुमानजी ने सुंदर कथा शुरू की है। सीताजी के दु:ख भाग गए हैं। पर बाप, ऐसा है कि ये फिर कब आ जाय कह नहीं सकते। कुछ ऐसा सुने तो हमारे सुख भागे पर चिंता न करे। ऐसा सब सुनना बंद करोगे तो भागे हुए सुख पुन: पास आ जायेंगे। क्या करना है इसका जवाब नरसिंह मेहता देता हैं-

सुखदु:ख मनमां न आणीए, घट साथे रे घडियां;
टाळ्यां ते कोईनां नव टळे, रघुनाथना जडियां।

सीताजी ने कहा, 'इतनी सुंदर कथा कहनेवाले तू प्रगट हो जा।' भक्ति 'रामायण' के वक्ता को कहती है, तू कथा क्यों छिपकर कहता है? प्रकट हो जा। तुरंत ही हनुमानजी डाली पर से कूदकर प्रकट हो गए। सामने आए तो सीताजी भयभीत हुई कि ओहो! बंदर! कोई राक्षस ही बंदर के रूप में आया है। मुंह फेर लिया। हनुमानजी के मौन हो जाने पर पुन: कथा शुरू करवाने के लिए एक मुद्दा खडा किया कि तू राम की मुद्रिका लाया है? तू ऐसा कहता है-

रामदूत मैं मातु जानकी।
सत्य सपथ करुनानिधान की।।

सौगंद के साथ बात रखी अत: जानकी ने प्रश्न किया है, बंदर और आदमी का संग कैसे हुआ? राम तो नरोत्तम है, तू बंदर है। यह मिलाप कैसे हुआ? उत्तर में हनुमानजी को पूरी कथा शुरू करनी पड़ी। कथा का पुन:संधान करने की जानकी की यह युक्ति थी। हनुमानजी को कहनी पड़ी। रामकथा कहनी थी पर सीताजी को लगा कि मुझे केवल रामकथा ही नहीं सुननी है, संतकथा भी सुननी है। रामकथा से दु:ख दूर होंगे, संतकथा से संशय जायेंगे। कैसे संगति हुई यह हनुमानजीको संकोच सह बताना पड़ा कि आपका अपहरण हुआ। फ़िर सीताजी को खोजने भगवान पंपा सरोवर से किष्किंधा आए तब सुग्रीव के साथ मैत्री हुई। फिर प्रभु ने हमें आपकी खोज के लिए कहा। सारी कथा कहनी पड़ी। संत ने कथा कही तब जानकी को भरोसा हुआ। आशीर्वाद दिए, तू बलवान, शीलनिधान होगा। अजर, अमर, गुणनिधि आदि आशीर्वाद दिए। और कहा, प्रभु तुझे बहुत प्रेम करेंगे। प्रभु तुझ पर बहुत करुणा

करेंगे। ऐसा सुनते ही हनुमान निर्भर प्रेम में डूब गए हैं। हनुमानजी ने माँ से कहा, माँ, अब मुझे भूख लगी है। जानकी ने कहा, 'यहां क्या मिलेगा? रास्ते में तुझे कहीं भूख नहीं लगी?' कहा, 'लगी तो थी पर खिलानेंवाला कोई नहीं था। खा जानेवाले मिले।' भक्ति माँ है। हमें तृप्ति देती है। माँ परोसती है तब जीव तृप्त होता है। कल मैं रसोईघर में गया। मुझे बापू ले गए तब अच्छे दृश्य देखने को मिले। बड़ा रसोईघर है। मुस्लिमभाई परोसते हैं। साहब, ऐसा सेतुबंध कथा के अलावा कौन कर सकता है? भगवद्कथा, साधु, संत, फ़कीर ये सब जोड़ने का काम करते हैं। ऐसे समारोह ही हमें धर्म के संघर्षो से मुक्त कर सकेंगे। हम परस्पर हिलमिल जायेंगे।

जानकीजी ने हनुमानजी से कहा, राम को हृदय में धारण कर मधुर-मधुर फल खाना। यह तो अशोकवाटिका है। इसमें विषाक्त फल भी है। हृदय में राम को धारण कर मधुर फल खाना। माँ को प्रणाम कर बाग में प्रवेश करते हैं। फल खाते हैं। वृक्ष तोड़ते हैं। ब्रह्मचारी ही मोह के वृक्ष को निर्मूल कर सकते हैं। संयमी ही ऐसा कर सके। राक्षस हनुमानजी को रोकने आए। कुछ को मारकर बेहोश किए। कुछ मर गए। कुछ रावण के दरबार में पहुंच गए। रावण को हुआ कि मेरी अशोकवाटिका में कोई बंदर उत्पात करे! अन्य राक्षस भेजे गए। वे भी मारे गए! कुछ भाग निकले! अक्षय का क्षय किया। यह समाचार लंकेश को राज्यसभा में मिलता हैं। रावण दु:खी हुआ। इन्द्रजित से कहा, पुत्र तू जा। बंदर को मारना मत, बांधकर ले आ। मैं देखना चाहता हूं कि यह कौन है? साहब, आज दो अतुलित इकठ्ठे हुए हैं। युद्ध शुरू हुआ है। हनुमानजी पर ब्रह्मास्त्र छोड़ा है। हनुमान मूर्छित हुए। इन्द्रजित गर्वीली चाल से नागपाश से हनुमानजी को रावण की सभा में ले आया है। अपमानित हुआ था तब मृत्युदंड का एलान किया था। राक्षस मृत्युदंड देने आते हैं उसी वक्त वैष्णव विभीषण का प्रवेश होता है। कहते हैं कि नीति ना कहती है, दूत अवध्य है। आप कोई दूसरा दंड दीजिए। हनुमानजी को लगा कि प्रभुभक्ति और प्रभुमहिमा कितना है कि मेरी माँ को रावण जब मारने जाता था तब उसी की गृहिणी ने विरोध कर माँ के प्राण बचाए थे। भक्ति की ताकत देखिए कि शत्रु के घर की व्यक्ति ही प्राण बचाए। मेरे मृत्युदंड की बात आई तो उसीका भाई मेरी सहायता में आया और कहा, दूत अवध्य है।

बंदर की पूछ जला दे और बिना पूंछ का बंदर जाएगा तब उसका मालिक भी डर कर वहीं से लौट जाएगा। सोना जलता नहीं। अग्नि में डाले तो चमकता है। परंतु यह जगत का नियम है कि भक्ति दर्शन करता साधक समाज में जब गर्जन करता खड़ा रहे तब समाज के लोग उसे खत्म करने का प्रयत्न करते हैं साहब! आप आदमी को दु:खी करना चाहे, बड़ी पीड़ा देना चाहे तो उसके ममता केन्द्र पर प्रहार कीजिए। बंदर की ममता पूंछ है। तो उसी पर प्रहार करो। समाज सुलगा देने की कोशिश करे परंतु हनुमानजी जैसे जाग्रत साधक हो तो जलते नहीं। समाज की मान्यताओं को जला देते हैं। समाज की दुर्वृत्तियों का नाश करेगा। पूरी नगरी में घूमाया। हनुमानजी उछल-कूद करते हैं। साहब, पूरी लंका जलाई है। समाज की गलज मान्यताएं जला दी। पूरी लंका जल रही है। तुलसी लिखते हैं, विभीषण का घर नहीं जला। सभी राक्षस रोते हैं। तात-मात को पुकारते हैं। हाहाकार मच गया है! पूरी लंका को अपना प्रभाव दिखाकर हनुमानजी ने समुद्र स्नान किया। पुन: लघु रूप धारण कर जनकसुता सन्मुख करबद्ध होकर खडे हैं। जानकीजी ने धैर्य बंधाया। हनुमानजी बिदा हुए।

'अशोकवाटिका' में एक सती भी है और एक जति भी है। वहां एक सती है जो कितने ही समय से वहां बैठी है। वह अपहृत सती का नाम सीता है। एक जति भी है, उनका नाम रावण है। जो दंडकारण्य में, पंचवटी में जति का रूप लेकर आया है। हकीकत में वह जति या संन्यासी नहीं, उसने केवल जति का रूप धारण किया है। रावण की अशोकवाटिका में दो संत है। एक नियत समय पर वहां हंमेशा आती हैं। रामकार्य हेतु थोड़े समय के लिए प्रवेश करती है। उसका नाम त्रिजटा है। और जानकी की खोज हेतु रामकार्य करने आये एक संत का नाम हनुमान है।

कथा-दर्शन

- 'रामायण' में किसी का वस्त्राहरण नहीं हुआ, मानवी की दुर्वृत्तिओं का अपहरण हुआ है।
- धर्म संघर्ष का क्षेत्र ही नहीं। संघर्ष करना हो तो अन्य क्षेत्र में करो।
- शास्त्रवचन का प्रामाणिकता से निर्वाह करना।
- भक्ति जैसी संजीवनी जगत में अन्य कोई नहीं है।
- भक्ति हर जगह रहती है। भक्ति को किसी की अस्पृश्यता नहीं होती।
- भक्ति में दिशा महत्त्व की नहीं होती, दशा महत्त्व की होती है।
- जो सच्चा गुरु हो वो नहीं बोलता, उनमें बैठे हुए हरि बोलते हैं।
- कोई गुरु की कृपा हुई हो तो उसको भुनाना नहीं।
- गुरु का सेवन करना हो तो किसी हेतु मत रखना।
- अन्य वचन निभा सके या नहीं, लेकिन गुरुवचन कभी मत तोड़ना।
- हमारे हिस्से का ईश्वर हमें मिले इनसे ज्यादा हम पचा नहीं सकते।
- पोथी खोलना सरल है, लेकिन हृदय खोलना बहुत कठिन है।
- विषमुक्त होना हो तो भजन करना।
- स्मरण भीतर से होना चाहिए, हृदय से होना चाहिए; सिर्फ़ होठों से नहीं।
- सुनने में और श्रवण करने में बहुत फ़र्क है।
- किसी की दो अच्छी बातें सुनो ये भी श्रवणभक्ति ही है।
- दो चीज़ बहुत सताती है-एक भय और दूसरा प्रलोभन।
- मन द्वारा किसी का द्रोह न करे उसका नाम मुनि।
- शाखाएं ऐसी रखो कि जिसमें पंखी घोंसला कर सके।
- अंधेरे का भी अपना एक उजाला होता है।
- जबरदस्ती किसीको भिक्षा नहीं दे सकते। जबरदस्ती किसी को शिक्षा नहीं दे सकते और जबरदस्ती किसी को दीक्षा नहीं दे सकते।

जनक की पुष्पवाटिका में फूल है, रावण की अशोकवाटिका में फल है

'मानस-अशोकवाटिका', जिसको केन्द्र में रखकर हम बहुत नजदीक से परिकम्मा कर रहे हैं। निकट से इसीलिए क्योंकि लंबे वर्तुल करे तो केन्द्र से दूर हट जाते हैं। जितनी छोटी परिकम्मा होती है, केन्द्र के नजदीक रहती है। हमें सीता के नजदीक रहना है। हमारे भीतर रही हुई ईश्वरदत्त शक्तियों के निकट, शांति के निकट, भक्ति के निटक रहना हो तो जितने बडे वर्तुल करेंगे उतना ही केन्द्र से दूर हो जायेंगे। केन्द्र को पकड़ सके इसीलिए निकट से परिकम्मा करते हैं। प्रवृत्ति ऐसी होनी चाहिए कि हम केन्द्र से दूर न निकल जाय। केन्द्रस्थ रहे।

तो बाप! जनक और रावण की अशोकवाटिका के बीच का साम्य और अंतर के बारे में हम सोचते हैं। दोनों वाटिका के केन्द्र में सीताजी है। पुष्पवाटिका में राम आते हैं। अशोकवाटिका में रावण आता है। पुष्पवाटिका में फूल ही है, फल नहीं हैं। भक्ति फल नहीं चाहती। फूल की महक फैलाती है। रावण की अशोकवाटिका में फलाकांक्षा है। फल है, फूल है ही नहीं। संतों से सुना है कि जनक की पुष्पवाटिका प्रेमवाटिका है। रावण की अशोकवाटिका मोहवाटिका है। जनक की पुष्पवाटिका में राम और जानकी का संयोग हुआ है। रावण की अशोकवाटिका में राम-जानकी का वियोग हुआ है। जनक की पुष्पवाटिका में शांति है। दोनों जगह माँ है। पुष्पवाटिका में जगदंबा भवानी बैठी है।

सर समीप गिरिजा गृह सोहा।

'रामचरित मानस' की 'अशोकवाटिका' में भी एक माँ हैं-

मातु बिपति संगिति ते मोरि।

उस माँ का नाम त्रिजटा है। जिसे जानकी माँ कहते हैं। पुष्पवाटिका में प्रवेश का समय सुबह का है। यद्यपि 'अशोवाटिका' में भी रावण लगभग सुबह ही आया है, सूर्योदय के बाद नहीं। भोर का समय है। अभी अंधेरा है। प्रश्न है कि भक्ति अंधेरे में खोजनी या उजाले में? रहस्यमय जिज्ञासा है कि भक्ति कहां खोजनी? उपनिषद कहते हैं कि 'तमसो मा ज्योतिर्गमय।' हमें अंधेरे से प्रकाश में ले जाइए। हम पढ़ते थे तब शिखरिणी छंद में प्रार्थना थी-

असत्यो मांहेथी प्रभु परम सत्ये तुं लई जा।
ऊंडा अंधारेथी प्रभु परम तेजे तुं लई जा।

उपनिषद कहते हैं, 'भाई, सत्य को पाना हो तो आपको अंधेरे से प्रकाश की ओर जाना होगा। सीता माने सत्य। सीता माने शांति। सीता माने सब कुछ। वे लीलार्थे नारीरूप आई है इसका अर्थ यह नहीं कि सीता ब्रह्म नहीं है। सीता ब्रह्म है, परमात्मा है, ईश्वर है, भगवान है। 'भग' शब्द दोनों को लागू होता है। शिव और भक्ति दोनों को 'भग' शब्द लागू होता है। भग का एक अर्थ ऐश्वर्य है। छः प्रकार के ऐश्वर्य जिनमें हो उसे भगवान कहते हैं। भगवान माने भगवाला आदमी। माँ भी भगवान है। उसे हम भगवती कहते हैं। एक भगवाली है, एक भगवाला है। अब सवाल यह है कि हनुमानजी सीता को खोजने अंधेरे में गए हैं। उपनिषद कहते हैं, प्रकाश में जाओ। शास्त्र ठीक है या संत? किसे आदर्श कहें? किसे मार्गदर्शक माने? जब तक बुद्धपुरुष न मिले तब तक शास्त्र के आधार पर चले। बुद्धपुरुष मिल जाय फ़िर

शास्त्र फेंक देना या नहीं? शास्त्र कहते हैं कि तू ओवरटेईक कर जा। बुद्धपुरुष मिलने पर शंकराचार्य भगवान कहते हैं कि आप शास्त्र को ओवरटेइक कर सकते हैं। हनुमानजी 'अशोकवाटिका' में रात को गए हैं। यह 'रामायण' में उस आदमी ने निश्चित किया संकल्प है-

पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार।।

चारों ओर रक्षकों की कडी तैनाती देखकर 'कपि मन कीन्ह बिचार।' कपिमन के दो अर्थ है-कपि माने हनुमान। कपिमन माने चंचल मन। बंदर जैसा चंचल मन विचार करता है और निर्णय करता है कि अति लघुरूप लेकर रात्रि में प्रवेश करूं। तो भक्ति अंधेरे में खोजनी या उजाले में खोजनी?

पहले इस बात का जवाब विनोबाजी ने दिया ये सुनो। हनुमानजी ने रात में जाने का क्यों निश्चित किया? विनोबाजी का मानना है कि किसी भी व्यक्ति का मूल रूप देखना हो तो रात में ही प्रवेश करना चाहिए। दिन में तो हमें सभ्य रहना पड़ता है! सोसायटी असभ्य होने नहीं देती। रात्रि का समय ही मानवी का मूल दर्शन कराता है। और मैं बड़ा हूं, फलां हूं ऐसा नहीं। 'अति लघु रूप' से भक्ति का पता चलता है। 'अति लघु रूप' लेकर प्रवेश करना पड़ेगा। ऐसा विनोबाजी कहते हैं। यह बुद्धपुरुषों की बात है। इसमें हम नहीं आ सकते। हमें अपने स्तर पर सोचना है। रामदुलारीबापू को मैंने नब्बे प्रतिशत अंधेरे में बैठे देखे हैं। जैन मुनि ज्यादा प्रकाश में नहीं बैठते। गुफ़ा का अर्थ क्या है? गुफ़ा का अर्थ है अंधेरे में निवास करना। गांव में रहनेवालों को पाता है कि अंधेरे का भी अपना उजाला होता है। प्रगाढ अंधकार हो और आप अकेले निकल जाय, साहब, अंधेरा ही राह दिखाता है। विज्ञान जिसे सिद्ध न करे सके ऐसा एक उजाला अंधेरा का होता है। अरबी भाषा में 'लयला' शब्द है, मजनू की प्रेयसी है, जिसका अर्थ है अंधकार। मजनू का अर्थ है पागलपन। किसीसे भी मजनू की तुलना यह उसकी तौहीन है। मजनू माने सूफ़ी फ़कीर की मस्ती। लयला को पाने मजनू की फ़कीरी हो तो इसका अर्थ है कि उसे अंधेरा प्राप्त करना है। उसे अंधकार द्वारा ज्योति प्राप्त करनी है।

अब ऐसा एक प्रश्न है कि 'बापू, हनुमानजी को अशोकवाटिका में सीता तक पहुंचने में कई विघ्न आये, तो हमें भी ऐसे विघ्न आते हैं?' अशोकवाटिका में सीता को मिलने जाना हो, शांति प्राप्त करनी हो तो विघ्न आ सकते हैं। पर मैं आपको डराना नहीं चाहता। बहुत शांति से बातें करनी है। विघ्न और कसौटी में फ़र्क है। हनुमानजी के मार्ग में विघ्न नहीं, कसौटी है। सत्य परेशान होता है। मेरी दृष्टि से सत्य को परेशानी भी नहीं होती। मैं अपना मत अलग रखते हुए भी सार्वभौम मत स्थापित करता हूं। शायद जगत के सामने सत्य परेशान हो जाय पर पराजित नहीं। जय-विजय के हमारे अरमान होते हैं। सत्य परमात्मा है। व्यक्तिगत रूप से मैं न तो विघ्नों न तो कसौटी को मानता हूं।

हनुमानजी की अशोकवाटिका तक पहूंचे, दरम्यान पांच कसौटियां हुई। प्रथम कसौटी मैनाक सुवर्ण पर्वत निकला। तुलसीजी हमें 'सुन्दरकांड' में ले जाते हैं। लंका का किल्ला भी सोने का निकला। 'कनककोट।' कुछ अटारियां भी सोने की थी। परंतु मेरी दृष्टि से मैनाक विघ्न नहीं है। कसौटी है परंतु विघ्न नहीं होता। कसौटी में भी उन्हें तो मज़ा ही आता है! हमें लगे कि कितना दुःखी हो गया। बेचारा सुक्रात सत्य की घोषणा करता था उसे भी जहर पिला दिया! गांधी ने 'रामनामसत्', है कहा तो वे गोली के शिकार हो गए! जिसस क्राईस्ट शूली पर चढ गए! यह तो हमारा अफसोस है। उपासकों को कोई अफसोस नहीं है। दुनिया का निर्णय तो उपरी सतह का होता है। जगत कृत्य देखता है। गुरु कभी चेला का कृत्य नहीं देखता। गुरु कभी किसी की क्रिया नहीं देखता। गुरु यह देखता है कि मुझ तक पहुंचा? अब यहीं से मेरा कार्य शुरू होता है। बुद्धपुरुष किसीकी क्रिया नहीं देखते, वे तो करुणा करते हैं।

नाताल का समय है अतः ये सब याद आता है। आज वर्ष का अंतिम दिन है। कल नव वर्ष होगा। शांति

से मनाईयेगा। कल रात को पागलपन न करे! खाना-पीना और उछलकूद ना करे! ऋषि को नीचा देखना पड़े ऐसा कुछ भी न करना बाप! यह तो 'सारे जहां से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा' है। नौरात्रि में खेलिए, आनंद कीजिए। पर माँ की मर्यादा को ध्यान में रखकर खेलना है। आज नई जनरेशन है। कईयों ने तो नए रिवाज शुरू किए हैं। आप नौरात्रि खेलिए पर माताजी न रखे तो किसे रखे? धर्म को धर्म से ही ग्लानि होती है। अधर्म से ग्लानि होती नहीं। अधर्म की हैसियत क्या? सनातन धर्म, वैदिक धर्म वटवृक्ष है। अपनी माँ तो अपनी ही होती है। क्या अपना गुरु अपना नहीं? हम सब को नमन करे पर जिसे हमनें जीवन अर्पण किया है साहब, वह तो कोई दूसरा ही होता है। हम किसीके गुरु की निंदा न करे। हमारा सो हमारा है। कच्छ के लिए त्रापजकरदादा ने लिखा दोहा-

कबूतर ऊड्युं कच्छथी, मुंबई आव्युं जोई,
ऐने वहालुं न लाग्युं कोई वागड जेवुं विठ्ठला।

मैं बाईबल को भी उतना ही आदर देता हूं। मैं जिसस की कितनी बातें करता हूं? मुझे जिसस की सरलता पसंद है। इस आदमी ने जितनी सरल बातें की इतनी बहुत कम बुद्धपुरुषों ने की है। इनके सूत्र सरल है। वे बहुत कम बोले हैं। दो सौ साल बाद वे मूल सूत्र जला दिए हैं और फिर निजी सूत्र डाले गए हैं! ऐसी बेहूदी प्रवृत्ति आज चल रही है कि सनातन धर्म के सूत्र कैसे बदल दें! इसमें सबको जागृत होने की जरूरत है। हमारी माँ हमारी माँ है। भारत भारत हैं। तो नया साल मनाईए। संस्कृति की शान रहे इस तरह नाताल मनाईए। साहब, मुझे इसु बहुत पसंद है। जिसस क्राईस्ट की एक बहुत सरल बात है। सरल वचन है। विद्वान आडंबर नहीं करते। महम्मद पयगंबरसाहब सरल भाषा बोल गए हैं। पर हम इसे कठिन कर देते हैं! कबीरसाहब सरल बोले। बुद्ध देहाती भाषा में उतरे। भगवान महावीर आगम में आए। तुलसी ने ग्राम्य भाषा में ग्रंथ लिखा। इन सभी की वाणी सरल थी।

भगवान जिसस का वाक्य है, 'दरवाजा खटखटाईए, खुल जाएगा।' इसका अर्थ है, परमात्मा के दरवाजे को खटखटाईए, खुल जाएगा। भगवान के सूत्र छोटे-छोटे हैं। सूफ़ी धर्म में राबिया और हसन है। दोनों बातें करते हैं। जागृत महिला राबिया ने कहा, हसन, दरवाजा बंद हो तो खटखटाने की जरूरत है। खुला ही है। वो स्त्री एक कदम आगे बढ़ गई! हम उस पंक्ति में नहीं आ सकते। ये पहुंचे हुए महापुरुष है। पर दोनों के वचन पर से मुझे कोई पूछे तो मैं कहूं कि दरवाजा है ही नहीं। खटखटाने की जरूरत ही नहीं। क्या आकाश का कोई दरवाजा है? ईश्वर तो आकाश से भी ऊंचा है। उसके दरवाजे नहीं होते। केनाल और डेम के दरवाजे होते हैं पर समुद्र के होते हैं? हेप्पी न्यू ईयर के नाम पर कितना अभद्र नाचना-खाना-पीना! ये लड़कें काफ़ी अंग्रेजी पढ़ गए इसका यह परिणाम है! जिस संस्था में आप पढ़ते हैं ये छाप-तिलक दे देती है! अध्यात्म किसीको छाप-तिलक न दे, छीन ले। शिक्षा कम होती है, सजा दी जाती है। सच्ची विद्या के केन्द्र तो प्रसिद्धिमुक्त होकर कोई महात्मा ही करते हैं। जिसे प्रसिद्धि नहीं चाहिए और जगत कल्याण के ही काम करते हैं। सावधान रहिए। अपना मूल मत भूलिए। सबको हेप्पी न्यू ईयर करे पर अषाढी बीच को न भूलें। चैत्र नौरात्रि के संवत्सर को न भूलें। दिवाली के बाद कार्तिक शुक्ल एकम जो हमारा नया साल है इसे न भूलें। ध्यान रखिए, हमारे साथ रहकर ही हमारी सनातन बातों के मूल को नष्ट करे उससे सावधान रहिए। इतनी एकाग्रता से आप सुनते हैं तो थोड़ी जागृति रहे इसकी बातें करता हूं। क्योंकि हम आपकी रोटी खाते हैं। आप इतना आदर देते हैं।

साधु हमें क्यों जागृत करता है? क्योंकि हम समाज का सच्चा घी खाते हैं। ठाकोरजी के दो दीए के लिए घी नहीं होता, बच्चों को फटे होठ पर लगाने घी नहीं होता पर कोई साधु आ जाय तो घी का शीरा बनाकर खिलाते हैं। यह ऐसा देश है। ऐसे समय समाज

को जागृत करने का दायित्व मठ, पीठ, धर्म संस्थान, व्यासपीठ का है। और इसमें साहसपूर्ण नम्रता चाहिए। आज नम्रता की बात से मुझे कथा शुरू करनी थी। एक वेदमंत्र लाया था जिसमें नम्रता को ईश्वर कहा है। आप सब बोलिए। टुकडे कर कहता हूं। सब बोल पायेंगे।

नम इदुग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम्।
नमो देवेभ्यो नम इश एषां कृतं चिदेनो नमसा विवासे।।

(ऋग्वेद-भाग: २, ६,५१,८)

यह वेदमंत्र मैंने इसीलिए लिखा कि सीता तक कौन पहुंचे, ऐसी अशोकवाटिका की थोड़ी बातें करनी है। उसमें मुझे यह मंत्र मिला। वेद के भाष्यकारों ने 'नम' का अर्थ नम्रता किया है। मैं नमन करता हूं, प्रणाम करता हूं। जो नम्र हो वही प्रणाम कर सकता है। नम्रता बहुत मुश्किल है। रावण की अशोकवाटिका में भक्ति, शांति और शक्ति तक पहुंचने के लिए प्रथम वस्तु नम्रता चाहिए। 'इदुग्रं'; ऋषि कहते हैं, उग्र मत होना। नम्रता की ऊंचाई पाने के बाद उग्र न होना। क्योंकि तुझे शांति तक पहुंचना है। पृथ्वी और आकाश को नम्रतारूपी ईश्वर ही धारण करता है। नम्रता ईश्वर है। आकाश और पृथ्वी को धारण किए हुए हैं। नम्रता देवता है, ईश है। यहां 'विवासे' का अर्थ है, तूं विशेषरूप से नजदीक में बास कर। उपासना के पर्याय जैसा यहां भाष्य करना पड़े क्योंकि वेद का अर्थ तो अधिकृत ही कर सकते हैं। हमारी हैसियत नहीं। महापुरुषों ने बताया हुआ सार को ग्रहण करे।

तो हनुमानजी को विघ्न नहीं आए। अशोकवाटिका तक पहुंचने में तकलीफ़ हुई है। प्रथम कसौटी हुई थी सुवर्ण मैनाक पर्वत, सुवर्ण लंका, हनुमानजी सोने के और सोने का पहाड निकला। पौराणिक कहानियों में पर्वत के पंख थे ऐसा आता था। फ़िर वो ईतने अभिमानी हो गये थे कि चाहे तब उड़ सकते थे। चाहे उसी गांव में बैठ जाते थे। नाश कर देते थे। पंख निकले तब ध्यान रखे कि ये पंख दूसरों को उपर जाने की प्रेरणा देने के लिए है। भगवान के पास शिकायत हुई। पंख काट डालने का एलान हुआ। पंख कट जाने पर जहां-जहां पडे वही अचल हो गए। मैनाक उड़ता-उड़ता समुद्र के पास आश्रय मांगने लगा, मेरे पंख कट जायेंगे। समुद्र ने मैनाक को आश्रय दिया। जब हनुमानजी अशोकवाटिका में जानकी से मिलने गए उस वक्त मैनाक पर्वत समुद्र से बाहर आया। प्रणाम किया। सुवर्ण का था। मेरी दृष्टि से हनुमानजी के लिए न तो विघ्न था न कसौटी थी। पर अपने स्तर से यह कसौटी थी। उन्होंने क्या किया? मैनाक का स्पर्श किया। यदि व्रत हो और कोई वस्तु खा न सके फिर भी मिले तो अनादर नहीं करते पर उसका स्पर्श कर लेते हैं। मैनाक बाहर निकला, हनुमानजी ने स्पर्श किया और कहा, 'आपका आदर कुबूल करता हूं पर मुझे देरी हो रही है, मैं जा रहा हूं।' अशोकवाटिका में रही शांति या भक्ति प्राप्त करने की प्रथम कसौटी सुवर्ण है।

दूसरी कसौटी? देवताओं ने सुरसा भेजी। हनुमानजी के मार्ग में लंकिनी राक्षसी विघ्न थी बाकी विघ्न तो देवताओं की ओर से थे। अपने मार्ग में तो दुश्मन छोटे-छोटे विघ्न देते हैं पर अपने हीं ज्यादा विघ्न देते हैं!

आग तो अपने ही लगा देते हैं।
गैर तो सिर्फ़ हवा देते हैं।

देवताओं ने ही सारी कसौटियां भेजी है। सुरसा हनुमानजी को गटकने निकली। आप सोने का त्याग कीजिए, पैसों का त्याग कीजिए। सर्वस्व त्याग दीजिए। यश-कीर्ति बढ़ेगी तब मुंह खोलकर डरावनी मुद्रा में हमें गटकने लोग आते हैं। जब संसार के वैभव छोड़ देंगे, आदर के साथ छोड़ देंगे तो कीर्ति बढेगी। ज्यों-ज्यों कीर्ति बढ़ेगी त्यों-त्यों समाज का भयानक मुख खुलेगा। देवताओं की ओर से कसौटी आए तब संघर्ष में नहीं उतरना चाहिए। लघु बन जाना चाहिए।

तीसरी कसौटी सिंहिका राक्षसी है। य राक्षसी आकाश में उड़ते को ही खाती है। राक्षसी जमीन की प्राणी है पर रहती है समुद्र में। खुराक आकाश का खाती

है। सिंहिका में तीनों का मिश्रण है। सिंहिका राहु की माता है। राहु से ग्रहण लगता है। ये जो तीसरी कसौटी है वो ईष्या है। जो उड़ते हैं उनको पकड़ने की कोशिश करती है। उड़ने हुओं को कोई पहुंचता नहीं। क्योंकि उनके पंख नहीं होते। उसे पंख है तो क्या करे? खुद को पकड़ न सके फिर परछाई पकड़े! यह इर्ष्यालु का लक्षण है। व्यक्ति को फ़िर परेशान करो। पर यह तो बुद्धपुरुष हनुमंत है। वे कपट जान गए फिर एकदम पल्टी मारकर समुद्र के स्तर पर आए और सिंहिका का नाश किया। इस कसौटी ने सीख दी कि अशोकवाटिका तक पहुंचना है तो इर्ष्या का नाश करना होगा। हनुमानजी ने कसौटी पार कर दी। साहसपूर्ण नम्रता, आडंबरविहीन सादगी, बिना प्रदर्शन का बलिदान, प्रपंचहीन प्रेम और ईश्वरदत्त बुद्धि के विवेकपूर्ण निर्णय हमें सीता तक पहुंचा सकते हैं। भक्ति नम्रतापूर्वक की वीरता चाहती है। भक्ति अहंकारमुक्त ज्ञान चाहती है। भक्ति पंखयुक्त विज्ञान चाहती है। जिसमें ये सारी चीजें होगी वह कसौटियों को पार कर और अशोकवाटिका में बंदी जानकी या शांति तक पहुंच सकता है।

सिंहिका मारकर हनुमानजी किनारे पर पहुंचे। लंकिनी राक्षसी खडी थी। फिर कसौटी आई। लंकिनी जो लंका ब्रिगह धारण कर आई थी। 'चोर को खाऊं' ऐसा कहा। ठीक नहीं लगा। क्योंकि दुनिया का महाचोर लंका में रहता है उसे तो तू खाती नहीं! सीता तक पहुंचने की इस कसौटी का नाम भेदबुद्धि है। अमुक के लिए ऐसा और अमुक के लिए वैसा विचार करना। रावण महाचोर है। इसका तू पक्ष लेती है। और राम की गुम हुई चीज को मैं लेने आया उसे तू चोर कहती हैं? हनुमानजी को यह ठीक नहीं लगा। तुरंत मुष्टि प्रहार किया। मुंह से खून निकल गया। संतों से सुना है कि संत की मुष्टिका लगने पर सिर से तो खून निकल जाय पर आदमी खुद विरक्त हो जाय। लंकिनी विरक्त हो गई है। साधु का हाथ पकड़े, साधु की कृपा हो जाय तभी साधु जाना जाता है। तुलसी सोच-समझकर शब्द प्रयुक्त करते हैं। 'पुनि संभारी ऊठी सो लंका।' सत्संग करने के बाद आलसी नहीं होना है, जागृत होना है, मंत्र मिला है। दीक्षा मिली। चेतना मिली। अब मैं अपने गुरु के विचारो को आगे बढाऊं। खड़े हो करबद्ध हो अपनी कथा कही। 'मुझे लगा, आप चौर है पर अब मेरी आंख खुल गई है। आपकी कृपा से ये हुआ है।' 'देखेउ नयन राम कर दूता।'अब आपमें मुझे चोर नहीं दिखता। राम के सेवक नजर आते हैं। संत हमारी दृष्टि बदल देते हैं। दो पल पहले हनुमानजी चोर दिखते थे। अब रामदूत लगते हैं। साधु का यही काम है। दृष्टि बदल देते हैं। भेददृष्टि दूर कर देते हैं। हनुमानजी महाराज लंकिनी को यह सद्बोध देकर लंका में प्रवेश करते हैं।

मूल में नम्रता और साहस हो तो 'अशोकवाटिका' में जानकी तक पहुंच सके। दूसरा सूत्र जो बलिदान दे सके वही 'अशोकवाटिका' में माँ शांति तक पहुंच सके। हनुमानजी मंगलमूर्ति है, प्रेममूर्ति है। जहां गुणातीत प्रेम हो, समस्त अंत:करण जहां विलीन हो जाए ऐसा प्रेम जिसके हृदय में होगा वह वहां पहुंच सकता है। गुरुकृपा से कोई न कर सके ऐसा काम करने की क्षमता जिसमें होगी फिर भी वह सबको नमन कर वह काम करने जाता होगा। पूर्ण क्षमता होने पर भी वह छोटों का वात्सल्य, समवयस्क का स्नेह और बडों का आशीर्वाद लेकर निकलता होगा वह भक्ति तक पहुंच सकता है। श्री हनुमानजी महाराज सबको आदर देकर गए हैं। ऐसी मनोवृत्ति रखेंगे तो सच्चे दिल से पहुंच सकेगे। सबने ना कही कि हम नहीं पहुंच सकेंगे फिर हनुमानजी ने सबको प्रणाम किया। जवानी में नम्रतापूर्वक साहस करना। बलिदान के लिए तैयार रहना। गुणातीत प्रेमपथ पर चलना। पर बुजुर्गोंके आशीर्वाद लेना। वृद्ध जामवंत को प्रणाम किया। माँ जानकी को मिलने का आवेश है फिर भी विवेक नहीं खोया है। सार यह है कि भजन लेकर गया आदमी भोगनगरी में सफल होकर लौट आता है। हनुमानजी के पास भजन था। लंका भोगनगरी है। फिर

भी यह मानव फेरा लगाकर भजन प्रताप से प्रभु कार्य कर निकल जाता है।

थोड़ा कथा का क्रम निभाऊं। भगवान राम का जन्म हमें मनाया। कैकेयी माँ ने भी पुत्र को जन्म दिया है। सुमित्राजी ने दो पुत्रों को जन्म दिया। अयोध्या चार राजकुमारों को पाकर धन्य हुई। सब बड़े होने लगे। नामकरण संस्कार होने को है। वशिष्ठजी ने आकर चारों भाईयों का नामकरण किया। कौशल्यानंदन का नाम राम, कैकेयीनंदन का नाम भरत, सुमित्रा के छोटे पुत्र का नाम शत्रुघ्न और तीसरे नंबर का नाम लक्ष्मण रखा है। यज्ञोपवित संस्कार हुए। फिर गुरु के यहां विद्या प्राप्त करने गए हैं। जिनके श्वास में वेद हो उन्हें पढाई क्या? पर ईश्वर ने मानवलीला करते वक्त हमें कहा कि किसी आचार्य से शिक्षा प्राप्त करना। यह प्रभु की कृपा है, हमारा समाज, गांव शिक्षित होने लगा है। अभी भी जो शिक्षण से दूर है उन्हें पढ़ाईएगा। शिक्षण बहुत जरूरी है। शिक्षण देनेवाली संस्थाएं भी छाप-तिलक नहीं देती। यदि हो तो भी छीन ले! उसे छोटे-छोटे वर्तुलो में बांध न दे। अध्यात्म जगत तो सब खींच ले। जब शिक्षण संस्था में जाता हूं तब मैं यों कहता हूं कि आपकी संस्था का मकान अच्छा हो, अच्छी पढ़ाई हो तो प्लीझ, आपको जितनी फीस लेनी हो उतनी लीजिए पर हमारे बच्चे जो पढ़ने आए उन्हें फ्री रखिएगा। आप उन्हें बंधन में मत बांधिएगा। ज्ञान का अर्थ मुक्ति है। जिस विद्या का अर्थ मुक्ति है उन्हें हम बांधते हैं। बच्चों को पढ़ाईए। राम भी पढ़ने गए हैं। अल्पकाल में राम विद्या प्राप्त करके लौटे हैं। उपनिषदादि पढ़े हैं। वे जीवन में उतारते हैं। सुबह उठकर वे माता-पिता-गुरु को प्रणाम करते हैं। युवा भाईयों और बहनों, पढ़े-लिखे हो तो सुबह घर से निकले तब माँ-बाप को प्रणाम कीजिए। घर में वरिष्ठ, श्रेष्ठ, श्रद्धेय हो, आचार्य हो उन्हें प्रणाम कीजिए।

'महाभारत' में तो जगत में किसका अभिवादन करना चाहिए, ऐसा एक बडा प्रश्न युधिष्ठितर ने पूछा है। दादा की समाधि का समय नजदीक आया है। कृष्ण पांडवों को तैयार करते है। ज्योति बुझे इससे पहले जिज्ञासाएं कर ले। क्योंकि एक शास्त्र पूरा हो जाएगा। भीष्म जीवंत शास्त्र है। राजनीनितक, शैक्षणिक, धार्मिक, अध्यात्मिक के प्रश्न आए हैं। इसमें युधिष्ठिर का प्रश्न है कि दादा, आपकी दृष्टि में समाज में किसका अभिवादन होना चाहिए? दादा जवाब देते हैं। इनके जवाब बहुत बड़े हैं। अभी तो मैं भी स्वीकार न कर सकूं ऐसे जवाब है। हां, वर्तमान जगत के लिए प्रासंगिक नहीं है। सब स्वीकार कर ले ऐसा भी नहीं। राजनीतिक प्रश्न था तो राजनीतिक ढंग से उत्तर दिया कि जो हमारी प्रशंसा करे उसका सन्मान होना चाहिए। पर मैं इसका स्वीकार नहीं करता। साधु इसका स्वीकार नहीं करते। अन्य क्षेत्र के चाहे इसका स्वीकार करे। कोई हमारी प्रशंसा करे तो क्या हम भी उनकी प्रशंसा करे? साधु की जीभ हरि की ही प्रशंसा करती है। सबको कुछ न कुछ काम सौंपे हैं। ब्राह्मण की जीभ को श्लोक, चारण की जीभ को लोकसाहित्य, साधु की जीभ को भजन और कईयों की जीभ को चतुराई। ये सब का निजी अधिकार है। उनकी अपनी निजी कला है। बाप! शास्त्र में संशोधन होना चाहिए। मैंने यह वर्षों से कहा है। और इसमें व्यास नाराज नहीं हो सकते। व्यास का अर्थ विशालता है।

बाप! पांच लक्षण बताए हैं। सन्मान किसका करें? दादा भीष्म कहते हैं धर्मराज, जो तपस्वी होता है उसका सन्मान होना चाहिए। तपोधनी के पास तप का धन होता है। दूसरों के लिए जो तप करे वह तपस्वी है। निंदा सहन करने जैसा और कोई तप नहीं है। भजन को न छोड़ना यह भी तप है। उनका सन्मान होना चाहिए। दूसरा लक्षण है, वेदविद का सन्मान होना चाहिए। इसका छोटा अर्थ न करे। वेदविद् का अर्थ है जिन्हों ने जानने जैसा सब जान लिया हो ये वेदविद है। बाईबल में से जानने जैसा जान लिया हो ये वेदविद् है। कुर्रान में से जानने जैसा जान ले वे वेदविद् हैं। आगम और

गुरुग्रंथसाहब में से जानने जैसा जान ले वे वेदविद् है। नीतिकार कहते हैं, ऐसे ज्ञानी की वंदना करने से हमारी आयु बढ़ती है। तीसरा लक्षण, जो आत्मश्लाधा न करते हो, निजी प्रचार हेतु नेटवर्क का सहारा न लेते हो उनका सन्मान करना चाहिए। यह भीष्म वाणी है। खून टपकता है! पीड़ा में से जन्मे हुए सूत्र है। आत्मश्लाधा से मुक्त किसी भी साधक का सन्मान होना चाहिए। चौथा सूत्र, जिसने सर्जनात्मक कार्य विश्वमंगल हेतु किए हो उनका सन्मान करना चाहिए। यों दादा भीष्म कहते हैं। पांचवां संक्षेप में कहा है कि कृष्ण भजन जिसने किया हो उनका सन्मान करना चाहिए। जिसने हरि को भजा हो उनका सन्मान करना है।

युवा भाई-बहनों, इन सबको वंदन करने से शेष आयुष्य बिताने में आनंद आता है। समाज में यश-कीर्ति में वृद्धि होती है। आत्मबल बढ़ता है। विद्या बांधती नहीं, मुक्ति देती है। इसीसे विद्या में वृद्धि होती है। विश्वामित्र ने आकर भोजन कराया। पुत्रों को प्रणाम कराया। दशरथजी राम-लक्ष्मण को सौंप देते हैं। रास्ते में ताडका का निर्वाण होता है। विश्वामित्र को विश्वास हुआ कि यह ब्रह्म है। दूसरे दिन यज्ञ शुरू हुआ। सुबाहु को निर्वाण दिया। यज्ञ पूरा हुआ। राम-लक्ष्मण विश्वामित्र हर्षित होकर मुनिगण के साथ जनकपुर की ओर पदयात्रा आरंभ करते हैं। रास्त में गौतमऋषि का आश्रम आता है। पथ्थरदेह होकर अचेतन जैसी स्थिति में एक ऋषिपत्नी उपेक्षिता सी चुपचाप पड़ी है। उसे देखकर प्रभु जिज्ञासा करते हैं, 'यह गुमसुम-सी कौन है?' 'यह गौतमपत्नी अहिल्याजी है। शापवश है। गौतमनारी पापवश नहीं, शापवश है। पथ्थरदेह बन गई है। आपकी चरणधूलि चाहती है। आप कृपा कीजिए।' मेरे राघव ने आदिकाल में स्त्री को जगत में स्थापित कर कितना स्त्री स्वातंत्र्य का कार्य किया था और कई लोग कहते हैं, स्त्री के साथ बात नहीं करनी चाहिए! मुझे दु:ख इस बात का है कि तगडी दक्षिणा लेनेवाले कुछ बोलते नहीं! और यह साधु अकेला बोलता रहता है! सनातन धर्म का प्रश्न है। यह जागृति बहुत जरूरी है। यह मातृशरीर है। भगवान ने कृपा कर चरणधूलि का दान किया। अहिल्याजी पावन चरण का स्पर्श पाकर तपपुंज की तरह प्रगट होती है। भूल कौन नहीं करता? भूल हो जाती है। अहिल्या का जीवन समझ में आ जाय तो राम के पास न जाना पड़े। देश का कोई साधु अयोध्या के राम को कहेगा, इसका उद्धार करो। मिलिन्द गढवी का शे'र है-

वो बूढा भिखारी दुआओं के ज़रिए
मेरी गर्दिशों को रफू कर रहा है।
जो सोंपा गया था कभी आंसूओं को
वो ही काम मेरा लहू रहा है।

साधु दवा करे। निंदा नहीं, निदान करे। अहिल्या के पक्ष में एक साधु खड़ा है। आज अहिल्या धन्य हुई है। प्रभु आगे बढ़े। भगवान जनकपुर पहुंचे। जनकराजा ने स्वागत किया। 'सुंदरसदन' में प्रभु का निवास हुआ। भगवान ने विश्वामित्र के साथ भोजन कर विश्राम किया।

प्रश्न यह है कि भक्ति को अंधेरे में खोजें या उजाले में? कहां खोजें? बहुत ही रहस्यमय जिज्ञासा यहां प्रकट कर सकते हैं कि भक्ति की खोज कहां करें? विनोबाजी का मानना है कि सीता की प्राप्ति और खोज का समय रात्रि का पसंद हुआ इसका कारण यह है कि किसी भी व्यक्ति का मूल रूप देखना हो तो रात में ही प्रवेश करना चाहिए। दिन में तो हम सब को सभ्य ही रहना पड़ता है! सोसायटी असभ्य नहीं होने देती। मानव के मूल रूप का दर्शन रात में ही होता है। गांव में रहनेवालों को पता होगा कि अंधेरे का भी निजी उजाला है। प्रगाढ अंधेरे में आप निकल पड़े तो अंधेरा ही उजाला बनकर पथ दिखाता है।

अशोकवृक्ष का मूल है विश्वास

'रामचरित मानस' में लंका अंतर्गत 'अशोकवाटिका', जिसके केन्द्र में भगवती जानकीजी है; गुरुकृपा से उनका दर्शन करते-करते हम जीवन का कुछ संशोधन कर रहे हैं। थोड़ा आगे बढ़े। 'रामचरित मानस' का दर्शन करते ऐसा खयाल आए कि जनक की पुष्पवाटिका हो या रावण की अशोकवाटिका हो, दोनों जगह दरवाजा है। जरूरी भी है। यद्यपि कल ही हमने शायद चर्चा की है, अध्यात्मजगत एक ऐसा जगत है कि जिसका कोई दरवाजा ही नहीं है। परंतु रामकथा तो जीवन का सत्य है। त्रेतायुग में घटित घटना जो उस युग में हुई थी, उसके सूत्र आज व्यक्तिगत जीवन के लिए सत्य के उद्घाटक बने हुए हैं। जनकपुर की पुष्पवाटिका में भगवान राम आए तब तुलसी को लिखना पड़ा-

लोचन मग रामहि उर आनी।
दीन्हे पलक कपाट सयानी।।

पुष्पवाटिका में भगवान राम गुरु की पूजा के लिए पुष्प लेने आए हैं। उसी समय सीताजी अपनी सखियों के साथ गौरीपूजा के लिए माँ का आदेश ले के जा रही है। उनकी एक सखी अलग हो जाती है, जो राम के दर्शन करती है और सीताजी को आह्वान करती है कि पूजा तो बाद में हो जाएगी, पहले रामदर्शन कर लो और जानकीजी प्रिय सखी को आगे करके रामदर्शन के लिए पुष्पवाटिका में गति करती हैं और तभी भगवान राम को जानकीजी देखती है, दर्शन करती है। साथ में सखी है। यह जनक जैसे महापुरुष की पुत्री है। सामने भी मर्यादा पुरुषोत्तम राम है। एकटक देखना मर्यादा का उल्लंघन है। और देखिए, पुष्पवाटिका में राम और जानकी का मिलन। बाद में 'अशोकवाटिका' में सीता और राम का वियोग। ब्याह के बाद भगवान का भी बहुत शृंगारिक वर्णन तुलसी नहीं करते। यद्यपि पुष्पवाटिका में शृंगार है। साहित्य के नौ रस है। 'रामायण' में सभी रस है परंतु साहित्य के विद्वानों ने यह कहा है कि नौ रस में भी तीन मुख्य है- शांत, शृंगार और करुण। पुष्पवाटिका में नेत्रों से बातचीत होती है। अति मर्यादा है। शृंगार भी है।

एक युवान ने पूछा है कि 'बापू, इस कथा के बाद मेरी शादी होनेवाली है। मेरी इच्छा है कि ब्याह के बाद मैं और मेरी पत्नी पहले कथा सुने और बाद में घूमने जाए।' ऐसा लिखा है। आप क्या अपेक्षा रखते हैं कि मैं क्या सुझाव दूंगा उन्हें? आप मुझे धार्मिक गद्दी पे बैठा मानोगे तो आपका जवाब क्या होगा इसकी मुझे ख़बर है कि बापू कहेंगे कि बहुत अच्छा, शादी करने के बाद तो पहले कथा में ही जाना चाहिए ना? मेरी 'रामायण' ना कहती है कि शादी के बाद सीधा कथा में नहीं जा सकते। तुलसी बहुत प्रेक्टिकल महापुरुष है। ये क्रांतिकारी शास्त्र का सृजनकार है। 'रामचरित मानस' कितना व्यवहारु निर्णय देती है! इसीलिए जीवन के सत्य इनसे उजागर होते हैं। मुझे तो अंत में 'मानस' को ही पूछना है। मेरा सर्वस्व 'मानस' है। मेरा ईश्वर, मेरा मंत्र, मेरा सब कुछ 'मानस' है। भगवान शिव और पार्वती के ब्याह का तुलसी ने बहुत मर्यादा से शृंगार वर्णन किया-

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा।
गनन्ह समेत बसहिं कैलासा।।

परंतु तुलसी ने क्या लिखा? सीधे कथा शुरू हुई शादी के बाद? नहीं हुई। तुलसीदासजी ने समय क्या कहा है?

एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ।

काफी समय वो घूमे और फिर एक बार पार्वती पेड के नीचे बैठी और बाद में शिवजी कथा कहते हैं। बच्चों, शादी के बाद घूमना; परंतु शादी से पहले जरूर एक बार सुनके ब्याह करना। घोडी चढ़ने से पहले 'रामायण' का धर्मरथ सुन लेना। जीवन के प्रत्येक विभागों का सम्यक् दर्शन होना चाहिए। शादी के बाद तुरंत कथा नहीं, यानी नहीं! अगर कथा में आए तो ख़बरदार!

बाप! जीवन में धर्म, अर्थ, काम और अंत में मोक्ष का भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। हमारे देश के ऋषिमुनियों ने जो सोचा है ऐसा जगत में किसीने नहीं सोचा इस बात का मुझे गौरव है। इतना चिंतन कि जीवन के प्रत्येक केन्द्र को उन्होंने स्पर्श किया है। 'मानस' ने शृंगाररस का भी स्पर्श किया। परंतु ये विदेहनगर का शृंगार है। ये लंका का शृंगार नहीं है। पुष्पवाटिका में शृंगार है फिर भी पूरा हेतु भिन्न है। दरवाजा है वहां लेकिन दरवाजा कब बंद करे और कब खोले इसका विवेक है। और वो विवेक आंख है। 'पुष्पवाटिका' में जो संवाद है वो आंख का विवेक है। वो देहनगर का संवाद नहीं है। बडे-बडे योगीओं के चित्त को जो हर ले ऐसी माँ जानकी का जो तत्त्वत: रूप है उनको शास्त्रकार प्रणाम करते हैं। बाप! दरवाजा जरूरी है। अच्छी चीज अंदर आने के बाद वापस चली न जाए इसीलिए। जानकीजी ने दरवाजे का प्रयोग किया-

लोचन मग रामहि उर आनी।

नेत्रों के दरवाजे से सीताजी ने राम के रूप को खुद के हृदय के कमरे में बंद कर ये रूप वापस निकल न जाए इसीलिए सयानी जानकी ने आंखों के दरवाजें बंद कर दिए। यह दोनों वाटिका का साम्य है। मुझे आपके साथ सिर्फ़ यही बातें करनी है कि जनक की 'पुष्पवाटिका' और रावण की 'अशोकवाटिका' में बहुत अंतर है और समानता भी है। तुलना भी कर सकते हैं। भेद भी दिखा सकते हैं। मैं 'सुन्दरकांड' पढता हूं तब ऐसा लगता है कि इसमें सुंदर वन है, उपवन है, वाटिका है, कुआं और बावडी भी है। पक्षी एक भी नहीं! आप कल्पना तो करो, जहां पानी होगा हां पक्षी भी होंगे। जनक की पुष्पवाटिका में पक्षी है।

चातक कोकिल कीर चकोरा।

चातक, कोयल, तोता, चकोर और नृत्य करते मोर ये सब है। यहां क्या? एक भी पक्षी नहीं है! हां, 'लंकाकांड' में जाएं तो दो पक्षी दिखते हैं-गीध और कौआ! किन्तु ये सब पक्षी जो पुष्पवाटिका में दिखते हैं वो सब यहां हाजिर क्यों नहीं है? ऐसा सुंदर उपवन, बाग, वाटिका है। जहां कुआं और सरोवर हो वहां पक्षी तो होने ही चाहिए। रावण दानें नहीं डालता होगा! या स्वर्ण का प्रभाव होगा? हमनें बनारसवाले डो.श्रीनाथजी से सुना। उन्होंने यह अर्थ किया कि पुष्पवाटिका में चार पक्षी है। जब संत बहुत अच्छे तरीके से ऐसे अर्थ हमको समझाते हैं तब बहुत आनंद होता है। जहां से नया मिले वहां खुश होना चाहिए। तो बाप! वो ये कहते कि चातक क्या बोले? 'पियु...पियु...पियु...' फिर कोयल का मंत्र है, 'कूहू, कूहू, कूहू...' और तीसरा नंबर तोते का आया। तोता तो राम ही बोलेगा ना, 'राम', 'राम', 'राम', आ गए हैं, बाद में चकोर बोला, चकोर को तो चंद्र के साथ ही प्रेम है। ये वही रामचंद्र है। ये तो वो राम है कि जिसके पीछे 'चंद्र' शब्द लगा है। हरि के दर्शन करके कोयल एक तरह से जिज्ञासा करे, कौन? और तोता कहे कि राम। यानी कौन? तब चकोर कहे कि रामचंद्र। किन्तु ये सब व्याख्या में ही रह गए! परंतु मोर तो राम को देखते ही नाचने लगा! मतलब कि व्याख्या करने से बेहतर नाचना है साहब! व्याख्या तो बुद्धि से कोई भी लंबी-चौड़ी कर सकता है। और लोग बहुत ही उदार है! उनको क्या पता कि ये शास्त्र में से आता है या घर की जेब से आता है! व्याख्या से कुछ नहीं मिलता है।

तो नाच लेना चाहिए। यानी वर्तमान में रहना है। ऐसा ही दृश्य पुष्पवाटिका में है। 'अशोकवाटिका' में पक्षी नहीं है, क्या होगा कारण? तुलसी बताये तो मालूम हो। हमको नहीं ख़बर! परंतु पक्षी नहीं है। एक-एक पक्षी एक-एक साधना तत्त्व का प्रतीक है। चातक की पुकार साधना का प्रतीक है। हरेक पक्षी एक साधना तत्त्व का प्रतीक है। यहां सभी साधकों की साधना पद्धति का निरूपण है। बहुत से मनुष्य केवल पुकारते ही है। ये बनिया और बनियण यात्रा करने गए और चोर आकर लूंट गए। रामदेवपीर की कथा में आता है कि उसने क्या किया? पीर को पुकारा-

वाणियो ने वाणियण जातराए जाय,
माल देखीने चोर वांहेवाहे जाय,
मारो हेलो सांभळो, हो हो हो जी...

चोर है न वो माल हो तो पीछे-पीछे जाए, माला हो उसके पीछे क्यों जाएं? परचे का अर्थ मैं परिचय करता हूं। हमारे यहां साधु-संत ऐसे सिद्ध थे कि मुर्दे को भी जिंदा कर दे। करते है न, दुर्गादासबापू? मैं इस सत्य का स्वीकार करूं परंतु अब संतों को ये परिश्रम करने की जरूरत नहीं है। डोक्टर और दवाईयां भी जिंदा कर देती है। मेरी तो इतनी ही बिनती है कि मुर्दे खड़े करने की जरूरत नहीं है। वो जिंदा है तो उसे जीने दो। बाकी साधु कर सकते हैं। यस, आई एग्री।

कोढियाना बापा कोढ मटाड्या,
हवे मारो शुं छे वांक...

माताजी मधर टेरेसा को याद करे। किसी ने उसको अमर माँ की पहचान नहीं कराई होगी। कोई पहचान कराए तो ख़बर हो कि इस देश में कितनी माँ हुई है! साहब, यह देश माताओं का है! इसीलिए 'भारतमाता' कहते हैं। कोई भी देश को माँ नहीं कहते। 'माँ' शब्द मात्र भारत को ही लगता है क्योंकि ये माँ हैं। माताजी ने तो उनके ढंग से बहुत काम किया। 'रामायण' चार प्रकार की बुद्धि

की बात करता है। क्रम में लूं। एक है कुमति, कुबुद्धि। बाद में मति, जो कुमति भी नहीं और सुमति भी नहीं है। चौथा ठिकाना परममति, जिसको उपनिषद प्रज्ञा कहते हैं वो ऋतंभरा। ये चार लक्षण है। तुलसी कहते हैं, यह क्या किया मंथरा और कैकेयी ने? वृक्ष को काट दिया और पत्तों को मिट्टी में डालकर उसने पानी पिलाने का धंधा किया? इसको कुमति कहेंगे। खुद के गुरु की कोई भी एक शाखा पे बैठा हुआ साधक उस डाली को नहीं काटेगा। खुद के धर्म में रहना बाप! किन्तु दूसरे धर्म को छोटा गिनने का नेटवर्क न लगा देना! हम जिस डाल पे बैठते हैं उसी डाली को काटते हैं! जिस सनातन धर्म की डाल से हम आए हैं, सब का मूल सनातन धर्म है।

तो बाप! जिसमें हमारी ही हानि है और फिर भी वही प्रवृत्ति करते रहे वही कुमति है। बाद में 'मति' आती है, ये अपना मुनाफा-नुकसान देखती है। भले दूसरों का नुकसान हो मगर मुझे तो नहीं होना चाहिए, ऐसी भावना रखती है। उसके बाद आती है सुमति। इसका अर्थ होता है कि कथा सुनते या गाते जो मुझे और आपको सुमति मिले तो इसका अर्थ दोनों का फायदा है। ये तीसरा स्टेज है। बाद में है प्रज्ञा। जिसको परममति कहो या प्रज्ञा, जो कहो। इसका अर्थ ये होता है कि जिसमें मेरा बिगड़े तो चले किन्तु सामने है वो मेरा ही स्वरूप है, वो भी मेरा है, उसका कोई नुकसान न हो। वो में हूं, ऐसा तादात्म्यभाव, ऐसा अद्वैतभाव। तो अब किसी लंगडे को पैर देने की जरूरत नहीं। जयपुर भेज दो! साधु को तप प्रयोग करने की कोई जरूरत नहीं है। पैर मिल जाते हैं। मैं इन चीजों को मानता हूं। मैं इसीको मानता हूं किन्तु वो सब नहीं कर पाते। बाकी तो सब दंभ चलता है! तभी तो रामदेवपीर बापा में जो सब बातें आती है वो विचार हैं, वो परचे नहीं है। यह मेरा नज़रिया है और मुझे कुछ खबर नहीं परंतु इसमें बनिया और बनियत है वो पुकार नाम की साधना का प्रयोग करते हैं। उनके पास और कुछ नहीं है। उसने पुकारा।

ये 'चातक कोकिल कीर चकोरा।' एक-एक साधक की साधना पद्धति का विश्लेषण है। बच्चा क्या जाने मंत्र? उसे कष्ट हो तब चीखते ही उसकी माँ समझ जाए कि या तो पेटदर्द होगा या वस्त्र गीले होंगे, या तो भूखा होगा, इसीलिए रोता है। मैं दूसरे काम में लगी हूं तभी मेरा ध्यान खींचने हेतु रो रहा है। और कोई भी कारण न हो तभी भी रोता है। आश्रित पांच तरह से रोता है। एक तो गुरु का ध्यान आकर्षित करने पुकारता है कि हमारी इतनी कक्षा नहीं कि तू ध्यान दे। या तो वासना ने हमें तनिक गीला कर दिया हो तब हमें रोना आता है। तीसरा, या तो कोई विकार हो तभी आश्रित रोता है। चौथा, भूख लगे तब रोए कि तेरे वचन, वाणी हमको सुननी है कि मेरे गुरु, तू बोल! और उसे पुकारे उसे जिज्ञासा कहते हैं। गुरु ने पूरी कृपा की हो तभी भी साधक रोता हो। और 'विनयपत्रिका' में लिखा है-

हरि! तुम बहुत अनुग्रह कीन्हो।
साधन-धाम बिबुध दुरलभ तनु,
मोहि कृपा करि दीन्हों।।

और मेरी तो प्रार्थना है कि हम यदि किसी श्रद्धेय की शरण चाहते हो और किसी की शरण में ही जीवन व्यतीत करने की इच्छा हो तो कभी समय मिले तब पांच मिनट भी सोचे। तब हमारी आत्मा कहेगी कि मेरी औकात से भी ज्यादा कृपा की है। कहने का अर्थ है कि परमात्मा की अत्यंत करुणा हम पर है। हम क्या कर सकते हैं बिना पुकार? बालक इतने प्रकार के रुदन में कभी बिना कारण भी रोता है। इसका अर्थ परमात्मा ने सारी कृपा की हो तभी भी साधक रोए तब समझ जाना कि उसको अनंत उपकार याद आते हैं। चातक पक्षी का पंथ है पुकार का। साधक के अलग-अलग संकेत है। 'पुष्पवाटिका' में चातक पुकारता है, उसे दूसरा कुछ नहीं आता। कोकिल भी जिज्ञासु है। जैसे कोई जिज्ञासु साधक 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' ऐसा करे। 'अथातो भक्तिजिज्ञासा' की बात करे यानी कोकिल जिज्ञासु प्रकार के साधक का

संकेत है। चार तरह के भक्त 'भगवद्गीता' ने कहे। 'रामायण' ने भी चारों का स्वीकार किया है-

रामभगत जग चारि प्रकारा।
चारेउ सुकृति अनध उदारा।।

साधक का दूसरा प्रकार दिया है जिसमें 'कूहू...कूहू...', साधक की जिज्ञासा, 'कोऽहम्', 'सोहम्'; ये सभी क्षेत्र कोकिल में आते हैं। जिज्ञासु साधक का नाम कोकिल साधक है। वृंदावन में एक सांई हुए है जिसका नाम है सांई कोकिल। और सीताजी की सखी की तरह उनकी उपासना थी कि वो राम को संदेश पहुंचाने का काम करे, ऐसे भाव रखते सांई कोकिलक। और जिसको कुछ न आता हो, जिसको कोई आर्त पीड़ा का भी अनुभव न हो, न कोई जिज्ञासाभाव हो या कुछ भी न समझ आए तो उसे तोते की तरह सिर्फ 'राम...राम...' करना चाहिए। ये तीसरा प्रकार साधक का। परंतु इतनी बड़ी से बड़ी चीज सस्ती हो जाती है तब लोग समझते हैं कि इसमें कोई अगम-निगम तो कुछ आता ही नहीं! 'राम...राम' तोतारट है! जो शंकर जपते हैं वही मंत्र है। शंकर के कहने से उनका बेटा ही नहीं, उनकी पत्नी भी यह मंत्र जपती है। रामनाम लो, हरिनाम लो। साधना के अलग-अलग संकेत इस घाट को लगते हैं। चकोर पक्षी की साधना है दर्शन करते रहना। नहीं नाम, नहीं जिज्ञासा, और नहीं पुकार। बिहारी के दर्शन करते-करते वैष्णवों की आंखों में आंसू आ जाए वैसे बहुत से मनुष्य खुद के गुरुदर्शन करने में रोते हो! ये लालबापू में मैंने देखा। शिवरात्रि के मेले में जाता तब मैंने कितने ही भक्तों को देखा कि और कुछ न करे लेकिन बापू को देखकर चुपचाप रोते ही रहते हैं! ये भी एक साधनातत्त्व है, किन्तु इसमें कोई मर्यादा न टूटनी चाहिए। पुष्पवाटिका में पक्षीओं का कलरव है। 'अशोकवाटिका' में ऐसी साधना पद्धति दिखती नही इसका कारण एक यह भी हो कि वो भोगनगरी है, देहवादी नगरी है, रजोगुण और तमोगुण से छलकी नगरी है। एक कारण यह भी है कि हम ऐसी 'अशोकवाटिका' की भूमिका समझने कि कोशिश कर रहे हैं इस कथा में वाटिका का तुलनात्मक अभ्यास करते-करते। तो, 'अशोकवाटिका' हमारे जीवन का सत्य दिखती है, इसीलिए इसकी थोड़ी सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा हो रही है। राम जनकपुर में आए तब आम्रकुंज में रुकते हैं। यहां अशोकवृक्ष की छांव में यत्नपूर्वक जानकीजी को बिठाया है। तो अशोकवृक्ष क्या है? इसकी थोड़ी-सी तात्त्विक चर्चा हमारी समझ में आए उसी तरह से करते हुए आगे बढ़े।

कोई भी वृक्ष हो उसमें इतनी वस्तु प्रधान होती है। एक मूल, दूसरी जड, तीसरी उसकी फैली हुई शाखाएं, चौथे उसके पर्ण और पांचवां उसका फूल। क्योंकि फूल की बात 'अशोकवाटिका' में नहीं। सीधे फूल की सूचना है पुष्पवाटिका में, 'सुमन पाई पुनि पुजा किन्ही।' 'अशोक' शब्द बहुत अच्छा है। अंतिम अवस्था का नाम है अशोक। मनुष्य है सारा काम करे परंतु किसी भी तरह का भार न रखे ऐसी भूमिका। कभी कार्य सफल न हो या कार्य अधिक मात्रा में सफल हो, किसी भी परिस्थिति में जिसका मन उद्वेग का अनुभव न करे, ना ही शोक, ऐसी एक अवस्था का नाम अशोक है। अशोक वृक्ष का मूल क्या? जिस वृक्ष की छांव में जानकीजी बैठी है, दूसरा कोई पेड पसंद नहीं किया। हमारे यहां वृक्ष में कौन से देव बसते हैं? उसका पूरा शास्त्र है। कुछ देवता यहां रहते हैं। खीजडे में कौन रहता है? हम अमरेली से सावरकुंडला जाते हैं तब बीच में लापळिया गांव आता है। मैं कभी उस रास्ते से निकलता हूं तब वहां दो-चार खीजडा दिखते है अमरेली से आये तो मेरी बाएं हाथ की और दो-तीन है। मैं वहां बैठता हूं। आगे के प्रोग्राम में जाने के लिए एक घंटा पहले निकलूं तो खीजडे पर जा कर अकेला बैठता हूं। मैं बहुत जाता था वहां परंतु बाद में बातें होने लगी कि बापू लापळिया के खीजडे पे बैठते हैं यानी किसी भूत की साधना करतें हो ऐसा लगता है! मैंने कहा, ये भूत और खीजडा दोनों तेरे! हमें नहीं

जाना! लोग तो कुछ न कुछ खडा करते ही हैं! मैं उसी दिशा में अब दर्शन करता हूं। वहां से निकलते समय देख लेता हूं।

तो बाप! 'अशोकवाटिका' के अशोकवृक्ष के नीचे जानकीजी बैठी है उसका मूल कैसा है? जहां पे सीता बिठाई गई, भले छाया जानकी की है। अशोक स्थिति को पाने के लए मूल में विश्वास होना चाहिए। इस अशोक वृक्ष का मूल है विश्वास, ये जिसमें न हो वो अशोकपद नहीं पाता। भरोसा, विश्वास इस अशोकवृक्ष का मूल है। ये शरीर है। यह हमारे यहां प्राचीन भजन में गति है, 'मूळ रे विनानुं काया झाडवुं।' किन्तु जिसको विश्वास मूल हो उसको ये बिना जड़ोवाला पेड़ भी कल्पवृक्ष जैसा फलदायी बन जाता है। और अंतिम भूमिका 'अशोक' की इसमें आ जाती है।

स्कंध, थड़। मूल जिस तरफ जमीन में पानी होता है उसी की ओर जमीन में गति करते हैं। विश्वास ऐसी वस्तु है कि जहां परमरस होता है उसी की ओर किसी को पता न चले इस तरह गति शरू करता है और वहां से परमरस ले आता है। बरगद को कौन पानी पिलाता है? वे पानी ढूंढ लेता है। और माधव रामानुज ने मूल पर बहुत अच्छी कविता लिखी है। विश्वास मनुष्य को कभी नीरस नहीं बनने देता। क्योंकि विश्वास शंकर है, उनके जैसा रसप्रद दुनिया में कोई भी नहीं हुआ। स्कंध यानी तना। ऐसा विश्वास किसी परिवार के एक व्यक्ति को हो जाए तो उसका पूरा परिवार, आप शिष्य परिवार मानो या आश्रित परिवार मानो, उन सभी को ऐसा लगता है कि नहीं, यह सच्चा विश्वास है। इसीलिए वे सभी वही विश्वास पे जीते हैं कि नहीं, उसने कहा वो सही है। जो हमें पसंद ना हो, वैसा भी हो तो हमें अच्छा लगने लगता है। उनकी जुबां में कहीं प्रभु बोलते होंगे। ये सभी चमत्कार की बात नहीं करता और व्यक्तिपूजा में जाना मुझे पसंद नहीं। सच्चा गुरु कभी बोलता नहीं है किन्तु उसमें रहा परमात्मा, ईश्वर, हरि ही बोलता है। क्योंकि गुरु एक ऐसा पद है कि ईश्वर उसे श्रम करने नहीं देता वे कहता है कि तुम चुप रहो। मैं बोलता रहूंगा। तेरी आंखों को कभी हानि न होगी, मैं ही देखूंगा। तेरे हाथों को कोई कर्म करने की जरूरत नहीं, मैं कर्म करूंगा। तुझे पैदल कहीं नहीं जाना है, मैं तुम्हारा वाहन बनूंगा।

स्कंध जब बड़ा होने लगे तब जड़ें नहीं दिखती परंतु प्लिन्थ दिखती है। परिपक्व प्लिन्थ। दादा मेकरण का मूल भी कितने विश्वास से भरा होगा, इसकी क्या कोई कल्पना कर सकता है? और फिर दादा मेकरण को माननेवाले कहते हैं, ये मेरे दादा बोले हैं। उन्होंने जो कुछ कहा उसके भरोसा रखनेवाले सभी आश्रितों उसका का स्कंध बनते हैं। साहब! फिर शुरू होती है शाखाएं। इसमें बहुत ध्यान रखना है। फिर ब्रांचीज शुरू होती है गुरु के नाम से! जिस तरह बेंक की शाखाएं होती है इस तरह शाखा शुरू होते ही हम शाखा के ध्यान में मग्न हो जाते हैं, मूल को भूल जाते हैं! बाप! शाखाएं सेवा प्रकल्पों की व्यवस्था है। वे ऐसी होनी चाहिए कि चिड़िया घोंसला बना सके। शाखाएं अनाथ को आश्रय दे सके। शाखाएं जरूरी है। जगद्गुरु शंकराचार्य ने चार मठ नहीं बांधे? पूरे देश को एक धागे से बांधना जरूरी है परंतु संघर्ष नहीं होना है। धर्म संघर्ष का क्षेत्र ही नहीं है। संघर्ष करना हो तो दूसरा धंधा करो। क्या धर्म में संघर्ष होता है? उसके बाद चौथा क्रम पत्तों की भूमिका से है। मूल को तो कोई एतराज नहीं क्योंकि विश्वास है। स्कंध को भी नहीं क्योंकि ये सब एक ही विश्वास पे जीते हैं तब तक बंधे हुए हैं। जो हमारे संत परोपकारी वृत्ति रखते हैं वही शाखाएं करती है, उसमें कोई एतराज नहीं। जब पत्तों का जन्म होता है तब उन्हें ऋतु असर करती है और उसमें एक ऋतु है पतझड़। जो पत्तों को शाखा से दूर करती है तब शाखा से ज्यादा पत्तों की आवाज़ आती है। आज सभी आवाज़ें जो शुरू होती है वो उपनिषदकार की तरह कहती है, 'न प्रज्या', हमारे पास इतने सारे लोग और सेवक है, उनकी आवाज़ होती है। उपनिषदकार कहते

हैं, तेरे साथ प्रजा कितनी, तेरे फोलोअर्स, चाहनेवाले कितने, उससे तुम अमृत नहीं पा सकते। तू अमृत को त्याग से ही प्राप्त कर सकता है। जब सुर्खियां बढ़ती है तब पत्तें आवाज़ करते हैं। मूल भी खुश होते हैं कि हरे पत्तें है। परंतु आपको पता होगा कि हरे पत्तें बहुत कम आवाज़ करते हैं। सूखे और नीचे गिरे हुए ढेर बने पत्तें ही ज्यादा आवाज करते हैं साहब! जो मूल से च्यूत हो गए और जीवन जिनके अंदर से खत्म हो गया है। किसी न किसी कारण उसका हरापन खत्म हो गया है। एक ही गुरु के दो शिष्य जब एक-दूसरे की इर्ष्या करे तब मुझे ऐसा होता है कि ये पत्ते सूख के नीचे गिरे है! मूल तो उसके पत्तें हरे रहे वही चाहता है। अंतिम भूमिका, जिसको अशोक कहते हैं, जिसको फल कहते हैं वो है अशोकतत्त्व। तो जानकीजी अशोकवृक्ष के नीचे बैठी है। गुरुकृपा से ऐसा कुछ रहस्य कह सकते हैं कि ऐसा हो सकता है।

कथा का थोड़ा क्रम जो समय बचा है उसमें लेता हूं। जनकपुर में भगवान राम-लक्ष्मण गुरुजी विश्वामित्र के साथ आए हैं। मिथिला का एक भवन है, जिसका नाम 'सुंदरसदन' है। संत तो ऐसा भी कहते हैं कि दो 'सुंदरसदन' थे, एक में सीता रहती थी और दूसरा खाली था। वो भक्ति है तो राम आएंगे ही और राम आएंगे तब उनका निवास दूसरे 'सुंदरसदन' में होगा। क्योंकि मिथिला की उपासना को आज भी जुगल उपासना माना गया है और जहां भक्ति निवास करे वो जगह सुंदर ही हो, असुंदर हो ही नहीं सकती। अरे, जहां जानकी की परछाई निवास करती है 'अशोकवाटिका' में वो पूरे कांड का नाम तुलसी ने 'सुन्दरकांड' दे दिया। इसका अर्थ प्रभु ने भोजन के बाद थोड़े समय विश्राम किया है। शाम हुई तो भगवान लक्ष्मण को नगर देखना है, उस मुद्दे पे जनकपुर देखने निकले हैं। सारा नगर राममय बना है। राम रूप, शील और बल के धाम है। इन तीनों के द्वारा राम ने तीन नगर को प्रेम मे डूबो दिया, उसकी ओर आकर्षित किया। शील से उन्होंने अयोध्या को जीता। नाम-रूप को मिथ्या माननेवाली इस मिथिला को खुद के रूप से वश किया और बल से अपनी लीला के अंतिम पडाव में लंका पे विजय प्राप्त करेंगे। शाम हुई। राम वापस आए। संध्यावंदन किया। रात्रि का भोजन कर बाद में वेदांत की चर्चा हुई। सुबह गुरुपूजा के लिए पुष्प लेने राम और लक्ष्मण जनक की पुष्पवाटिका में प्रवेश करते हैं। उसी समय गिरिजा की पूजा के लिए जानकीजी को महारानी सुनयना ने सखीओं के साथ माँ भवानी के पूजन हेतु भेजा है। सीताजी सखी के माध्यम से रामदर्शन पाती है। और प्रथम मिलन में एक ही ब्रह्म के ये दो रूप एक-दूसरे को निहारते हैं। जानकीजी सखी के साथ गौरी के मंदिर में आई है। मूर्ति की स्तुति करते हैं। मुनाफा होगा या नुकसान ऐसे प्रलोभन मेरी व्यासपीठ किसीको नहीं देती। आनंद आए इतना कहूं, कुंआरी बेटियां ये स्तुति करेगी तो वर्तमान में आनंद होगा।

जय जय गिरिबरराज किसोरी।
जय महेस मुख चंद चकोरी।।

सुंदर स्तुति की है 'मानस' में। पार्वती प्रसन्न हुई है। मूर्ति हंस के बोली है। मैं चमत्कार में नहीं मानता ये सारी दुनिया जानती है परंतु मैं फिर इसका अनादर भी ना करूं। हम उस कक्षा पे नहीं है इसीलिए हमको लगे कि मूर्ति क्या हंसती होगी? क्योंकि हमारे साथ तो पडौशी भी नहीं हंसता! मूर्ति का हंसना तो बहुत दूर नगरी! पडौशी तो क्या, घर में दो लोग भी एक-दूसरे के सामने कहां हंसते है? जानकीजी सखीओं के साथ भवन में आई है। इस ओर राम-लक्ष्मण फल लेकर गुरु के पास आए और पुष्प से गुरु की पूजा की। गुरु ने आशीर्वाद दिया। दूसरे दिन धनुषयज्ञ का समय है।

मुनिगण के साथ राम-लक्ष्मण यज्ञभूमि में प्रवेश करते हैं। धनुषयज्ञ में सब राजा बिराजमान है। एक के बाद एक राजा धनुषभंग करने का असफल प्रयास करते हैं। कोई भी धनुष को तोड़ नहीं सका। महाराज जनक जैसे ज्ञानी पुरुष थोड़े अशांत हुए है। मेरा राम गुरु को लेकर आया है। और जो गुरु को लेकर आता है उसके हाथ से ही अभिमान का धनुष टूटता है। भगवान राम को

आदेश होता है, राघव, उठो, धनुष को तोड़ो, जनक के दु:ख को दूर करो, आप और जानकी तो एक ही हो ना? राम मन में ही गुरुवंदन करके खडे होते हैं और भगवान राम धनुष तोड़ने का निर्णय करते हैं। एक क्षण के मध्य ही धनुष तोड़ दिया! जानकीजी माला पहनाती है। परशुरामजी आए। राम को देखते ही उनकी आंखें स्तंभित हो गई! जयजयकार करके परशुरामजी तपस्या के लिए अवकाश प्राप्त करते हैं। माघ शुक्ल पंचमी, गोरज के समय, राम-सीता के ब्याह का निर्णय हुआ है। सीता राम को अर्पित हुई। उसी वक्त विचार आया कि जनक की एक कन्या उर्मिला, छोटे भाई की दो बेटियां श्रुतकीर्ति और मांडवी, ये तीनों का ब्याह तीनों राजकुमारों से हो जाए। ये पूरा आध्यात्मिक प्रसंग है। जैसे चारों अवस्था जाग्रत, स्वप्न, सुषिप्ति और तुरीया अवस्था है।

विवाह संपन्न होते हैं। दिन बीतने लगे। महाराज जनक चारों बेटियों की बिदा करते हैं। सबके साथ महाराज दशरथ अयोध्या पहुंचते हैं। एक के बाद एक विधियां होती है। मेहमान बिदा हो रहे हैं। अंत में विश्वामित्र महाराज की बिदा का प्रसंग आता है। और पूरा राजपरिवार भगवान विश्वामित्र की बिदा के लिए आया है। तुलसीदासजी ने उसके लिए पंक्तियां लिखी है कि हे महाराज, ये सारी संपदा आपकी है, हम तो आपके सेवक हैं। जब आपको साधना में अवकाश मिले तब आकर हमें दर्शन देकर कृतकृत्य करना। राम के रूप का स्मरण करके, भक्ति को याद करते हुए विश्वामित्रजी ने तपस्थली में जाते हुए बिदा ली। पूरा पक्ष मुझे बहुत पसंद है। एक साधु ने अयोध्या आके दशरथ के सारे कार्यों को पूर्ण कर वापस पैदल चलकर बिदा ले ली। यह साधु का कर्तव्य है। ईश्वर ने कुछ क्षमता दी है तो सबके कार्य करने है परंतु गृहस्थ के घर जाकर उनका कार्य पूर्ण होते ही तपस्वीओं को चले जाना चाहिए। यह त्याग-वैराग्य का पक्ष है। तपस्या और भजन के बदले दूसरा कुछ नहीं होना चाहिए। ऐसी एक उदात्त विचारधारा के ये सारे पक्ष है।

यहां सीताजी जबसे आई तभी से अयोध्या की समृद्धि बहुत बढ़ी है, आनंद है। सुंदर आशीर्वाद दिए हैं। आप देखना, वैंकटेश प्रेस के 'रामायण' में हरेक कांड खत्म हो तब उसका फलादेश अलग-अलग है। 'विमल वैराग्य संपादनोनाम्' ये सभी कांड का फलादेश नहीं है। परंतु मैं जब आपके सामने कथा गाता हूं तब संक्षेप में सभी कांड खत्म करते हुए उसके अंत में यही वस्तु गाता हूं, 'विमल वैराग्य संपादनों का द्वितीय सोपान, तृतीय सोपान', इसका कारण गुरु आज्ञा है। मुझे कहा गया था कि साधु को 'रामायण' गाने के बाद वैराग्य के सिवा किसी भी फल की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। इसीलिए आज तक इस वस्तु को निभाता हूं। और वैराग्य भी 'विमल वैराग', रजोगुणी वैराग्य नहीं, निर्मूल वैराग्य। हमें और क्या चाहिए यार! प्रभु ने कृपा की है तो आनंद करते हैं। लोग सन्मान दे, आदर करे और खाना दे! परंतु ध्यान रखना चाहिए। आखिर साधु को निर्मल वैराग्य प्राप्त करना होता है। अंतिम पडाव यही होता है, इसीलिए मैं उसी गुरुआज्ञा को निभा रहा हूं।

कुमति उसे कहते हैं जो मतिवाले को भी भ्रमित कर दे कि वो खुद का ही बुरा कर दे और पता भी न चले! तुलसी कहते हैं, ये क्या किया मंथरा और कैकेयी ने? वृक्ष को काट दिया और पत्तों को मिट्टी में डालकर उसे पानी पिलाने का काम किया? इसे कुमति कहते हैं। अपने गुरु की किसी भी शाखा पर बैठा हुआ साधक वो डाली नहीं काटता जिस पर वो बैठा है। अपने-अपने धर्म में रहना बाप! किन्तु दूसरे धर्म को निम्न समझने का नेटवर्क मत बनाना! हम जिस डाल पर बैठते हैं उसी को काटते हैं! सबके मूल में सनातन धर्म है। और फिर आप उसी डाली को काटते हो!

आंसू हृदय की वाटिका का लक्षण है

बाप, 'मानस-अशोकवाटिका', जिसको केन्द्र में रखकर हम हमारे जीवन की खोज हमारे विश्राम के लिए कर रहे हैं वो भी संवाद के रूप में। ऐसे तो शास्त्रों की गलियों में से गुरुकृपा से अनेक वाटिका मिलेगी 'मानस' के अंतर्गत। मुख्य रूप से दो वाटिका, एक तो पुष्पवाटिका और जिसकी तुलना करते हैं वो रावण की 'अशोकवाटिका।' बीच में जो वाटिका तुलसी ने बताई वो -

बिष बाटिकाँ कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि।।

ऐसा कह कर तुलसी ने विष की वाटिका का उल्लेख कर दिया। पर आपने ग्रंथों में पढ़ा होगा, सुना होगा कि स्वर्ग में एक वन है जिसका नाम 'नंदनवन' है। ये स्वर्ग में है परंतु स्वर्ग कहां है ये पता नहीं! लेकिन स्वर्ग और नर्क दो वस्तु है। ग्रंथो में भी इसकी चर्चा की गई कि स्वर्ग में देवता निवास करते हैं वहां 'नंदनवन' है। 'नंदनवन' का पर्याय शब्द 'अमृतवाटिका' है। देवताओं के पास अमृत है इसलिए स्वर्ग में सोमरस की नदी बहती है, ऐसा भी कहा गया है। स्वर्ग के अनेक वर्णन है और विचित्रता ये है कि सभी धर्मों के अलग स्वर्ग है! पर हम उसमें नहीं जायेंगे। नंदनवन का दूसरा नाम अमृतवाटिका मतलब वहां सभी अमृत पीते हैं। अब ये अमृत है कि सोमरस ये पता करना मुश्किल है! सोमरस का वर्णन वेदों में भी किया है। सोमरसपान की चर्चा हुई है। ये किसी प्रकार का उत्तेजित पेय होगा। मुझे कोई पूछे कि सोमरस कौन-सा, तो मैं कहता हूं कि -

राका रजनि भगति तव राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल बसहुँ भगत उर ब्योम।।

तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' में भगवान के अनेक नाम, उड़गन की तरह, तारों की तरह कहा, परंतु इसमें रामनाम है यह चंद्र है। चंद्र में से रस बरसता है ऐसा कहा जाता है। और जो वनस्पति का पोषण करके सजीव बनाता है। तो चंद्र के रस को भी अमृत गिना जा सकता है। और 'मानस' की दृष्टि से रामनाम चंद्र है और रामनाम का रस गुरुकृपा से जिसने पीया हो उस रस का नाम अमृत है या सोमरस है। सोमरस उत्तेजित पदार्थ नहीं, परंतु अमृतरस है जो सभी को शांत करता है। अनेक प्रकार के उहापोह, तर्क-वितर्क को कोई शांत करता हो तो वो है सोमरस। ये रामरस है और रामरस को जीने के लिए नरसिंह मेहता आतुर है, इसलिए वो कहते हैं -

रामसभामां अमे रमवाने ग्या'ता,
पसली भरीने रस पीधो रे...

'नंदनवन' को 'अमृतवाटिका' कहा जाता है। स्वर्ग में एक वाटिका है। पाताल में भी एक वाटिका है। क्योंकि पाताल लोक पूरा नागलोक का देश है। सर्पों की नगरी है पाताल और जहां सर्प है वहां विपुल मात्रा में विष होता है। एक वर्णन तो ऐसा है कि सर्प भी भजन करते हैं और सर्प जब भजन करते हैं तब इनके अंदर का जन्मजात विष भी कम होने लगता है। कम होता है, परंतु इनका विग्रह तो ज़हरयुक्त ही रहेगा। लेकिन कम होता है मतलब थोड़े

निर्विष होते हैं। और ये निर्विष हो तो शायद..! कारण स्वर्ग, पताल सभी जगह युद्ध होते ही रहते हैं! सभी जगह संघर्ष है! संघर्ष के लिए आंखों में ज़हर होना चाहिए। हिंसावृत्ति को जाग्रत करने के लिए अमर्ष चाहिए। फिर शास्त्रों में जिसे 'मन्यु' कहा है। ये मन्यु मतलब क्रोध यानी 'पुन्यप्रकोप'। इस तरह शब्द सुधार करके अमुक को ये करने की छूट दी है! जैसे संविधान में लोग राजनीति में सुधार करते हैं और अमुक को फायदा नहीं होने देते?

तो, पाताल में युद्ध होता है, स्वर्ग में होता है, पृथ्वी पर भी होता है। तो पाताल में भजन होता है क्योंकि नारदजी पाताल में जाते हैं और वहां थोड़ी भजन की वर्षा कर आते हैं, इसलिए राक्षस भी भजन करते हैं। ये लंबी कथा है जो मुझे नहीं करनी। लेकिन इतना समझना कि ज़हर ऊतारना हो तो भजन करना। भजन की व्याख्या क्या है ये अलग प्रदेश है। मेरी दृष्टि से भरोसा ही भजन है। चाहे जितना हम भजन गायें, लिखें, विचारे, पर भरोसा नहीं करे तो? तो बाप, भजन करने से तो पाताल के राक्षसों का भी ज़हर उतर जाता है, लेकिन संघर्ष के समय ज़हर चाहिए, और लोग ज़हर का स्टोक करने लगे! और सबने थोड़ा-थोड़ा एक जगह पाताल में इकठ्ठा किया। इतना ही नहीं अनेक जगहों पर ऐसे वृक्ष लगाएं लेकिन ज़हर के वृक्ष लगाएं! अफीन, धतूरा, टंकाबू जैसी वनस्पति होती है इनको बोने का काम पाताल में भी हुआ जिसके कारण पाताल की वाडी का नाम 'विषवाड़ी' रखा गया। स्वर्ग की वाटिका का नाम 'अमृतवाटिका', पाताल की वाटिका का नाम विषवाटिका। जनक की वाटिका का नाम पुष्पवाटिका। रावण की वाटिका का नाम अशोकवाटिका। परंतु एक और वाटिका है जिसका नाम 'नभवाटिका' बताया है। ये निरंतर बदलती रहती है। ये प्रकाशमय है। सभी तत्त्वों को अंदर समेटकर फलीफूली है, ये 'नभवाटिका'। ये आलौकिक है, असंग है, रंगमुक्त है, अस्पर्श है। महसूस कर सको। आप उसे स्पर्श न कर सको।

तो इन वाटिकाओं को केन्द्र में रखकर चलती ये नौ दिन की कथा। इसमें 'मानस-अशोकवाटिका' नाम रखा तब 'मानस' का अर्थ है हृदय, 'मानस' मतलब मन।

रचि महेस निज मानस राखा ।
पाई सुसमउ सिवा सन भाषा ।।

'मानस' का एक अर्थ है हृदय। 'मानस-अशोकवाटिका'; तो उसका एक अर्थ होता है कि हृदय भी एक 'अशोकवाटिका' है। जैसे 'मानस-धरम'; अभी लोकार्पित हुआ एक पुस्तक जिसमें चर्चा हुई कि 'मानस' स्वयं एक धरम है। हमारा मन ही हमारा धर्म है। धर्म का निवास छाती में होता है, अधर्म का पीठ में बताया गया है। धर्म छाती में जन्म लेता है और हृदय छाती में होता है। तो विश्व के लिए अच्छा शब्द हृदयधर्म है। हमारे यहां हिन्दु, मुसलमान तथा अन्य कई धर्म है और सबको खुद के धर्म का गौरव होना चाहिए। सब एक-दूसरे से प्रेम करे, तोड़े नहीं, संघर्ष न करे ये हमें देखना है। बाकी तो सब बगीचे में अपने ढंग से रहते हैं। फिर एक धर्म की बात आती है 'मानवधर्म'; ये विचार अच्छा है पर फिर ऐसा विचार आया कि मानवधर्म में तो सिर्फ़ मानवों की ही गणना होती है। इस अनंत अस्तित्व में तो कितना कुछ है! इसलिए मानवेतर धर्म के बाद मानवता का धर्म आदि-आदि सब चलता है। पर 'मानसधर्म' मतलब जिसे हृदयधर्म गिने तो अच्छा शब्द है। मानव न हो पर सबके पास हृदय तो होता है न? पशु हो तो उसे उसके अनुसार हृदय होगा। वृक्ष होगा तो उसमें अति सुषुप्त चेतना है। ऐसा कहा जाता है कि पत्थरों में भी अत्यंत सुषुप्त अवस्था में चेतना होती है, ऐसी वैज्ञानिक खोज भी जारी है।

तो, जिस तरह विनोबाजी ने 'जय जगत' कहा, फिर उन्हें विचार आया कि मुझे 'जय विश्व' कहना चाहिए। आगे जाने का विचार आया। तो ये भी

विचार करने ने जैसा है कि 'मानवधर्म' की जगह 'हृदयधर्म।' और जहां हृदय होता है वहां धर्म होता है, अधर्म नहीं, इसलिए 'मानवधर्म।' से भी आगे 'मानसधर्म' तो 'मानस-पुष्पवाटिका' का अर्थ हम हृदय की 'पुष्पवाटिका' अथवा हृदय की 'अशोकवाटिका' कर सकते हैं। रावण की जिस वाटिका का और लंका का तुलसी ने जो दर्शन कराया उसमें जल को लागू हो ऐसे तीन स्थान बताएं।

बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।

बन, बाग, उपवन, वाटिका, वनस्पति के लिए चार विभाग बताएं हैं इस तरह जलतत्त्व के लिए भी बताएं। मेरे और आपके शरीर में रहा हृदय, शरीरशास्त्र के अर्थ में ये अवयव है, एक पम्पिंग स्टेशन है। जो सदा धड़कता रहता है। आध्यात्मिक दृष्टि से कहे तो कुए में पानी गहरा हो तो गहराइ में ऊतरने पर ही पानी पाया जा सकता है। वावडी भी ऐसे तो कुआं ही है मगर अंतर ये है कि उसमें निश्चित अंतर से सीढ़ियां बनाई जाती है जिसके कारण कोई भी व्यक्ति जल तक आसानी से पहुंच जाता है। 'अशोकवाटिका' में तीन प्रकार के जलस्थान बताए हैं। तो हृदयवाटिका में भी कहीं वाव, कहीं कुआं तो सरोवर है। कहीं वन, कहीं बाग, कहीं उपवन है।

बहुत से हृदय जो धड़कते हैं, पंप चालू है पर पानी बहुत गहरा है! उर्दू-फारसी साहित्य में एक शब्द आया 'संगदिल', 'पत्थर दिल।' आज पूरे विश्व में संवेदना की बातें चालती है। ये देश भी संवेदना का देश है। हमारा धर्म संवेदना का धर्म है। 'रामायण' भी संवेदना से जन्मा है। राम भले अग्नि के प्रसाद से जन्मे हो, सीता भले जमीन में से जन्मी हो। परंतु दोनों चरित्र का जिसने गायन किया वह शास्त्र 'रामायण' तो संवेदना से प्रकट हुआ है। तथा उसमें से 'वाल्मीकि रामायण' का जन्म हुआ और विद्वान कहते हैं कि वाल्मीकि के मन में से निकले शोक के अक्षर ही श्लोक बन गये और पूरा 'वाल्मीकि रामायण' निकला।

तो ये देश संवेदनाओं से भरा हुआ है। हां, एक धर्म दूसरे धर्म को नीचा दिखाने के लिए होशियारीपूर्वक नेटवर्क तैयार करता है तब धर्म अपनी संवेदना खो देता है! और ये वो ही कर सकता है जिसके हृदय में पानी नहीं होता है। पानीतत्त्व मतलब संवेदनातत्त्व। पानीतत्त्व यानी पसीना का तत्त्व; परिश्रम का, साधना का और तपस्या का तत्त्व। पानीतत्त्व यानी किसी को याद करने पर आंख में से आंसू निकलते हो वो आंसूतत्त्व। यह हृदय की वाटिका के लक्षण है। बहुत-से लोग मुझे कहते हैं कि बापू, पहले कथा सुनते थे तो आंख में से आंसू निकलते। ये हर प्रसंग पर रोते थे। परंतु कामधंधे में पड़ गये, फेक्टरी बन गई। व्यस्तता बढ़ी उसके कारण चौपाई तो याद आती है पर रोना नहीं आता! व्यस्तता के कारण रस चला गया। मेरी दृष्टि से ये घाटे का सौदा है। तुम कितना भी कमाओ पर गुरु का स्मरण हो पर बात न कर सको ऐसी स्थिति जब चली जाय तो यह नुकसान का धंधा है साहब!

ऐसे कहा जाता है कि गुरु-शिष्य के बीच में अद्वैत की मनाई है। वहां द्वैत रखना पड़ता है कि ये मेरा गुरु है, मैं आश्रित हूं। बाकी सब जगह अद्वैत चलता है। हां, शंकराचार्य भगवान कह दे कि 'गुरुर्नैव शिष्य:' ऐसी भूमिका में शायद जरूर न हो फिर भी तब तक तो गुरु गुरु है और शिष्य शिष्य है। मेरी व्यक्तिगत धारणा है। हमें अद्वैत का आडंबर करना नहीं है। मुझे खुमार बाराबंकवीसाहब का शे'र याद आता है।

मेरे राहबर मुझको गुमराह कर दे।
सुना है कि मंज़िल करीब आ गई है।

कभी अद्वैत जैसा आ जाए तो फिर आनंद नहीं आये, जो गुरु होता है वह अंत:करण से मुक्त होता है। शिष्य को रखना पड़ता है कि मेरे पास मन है। जो मन न हो तो स्मरण किसका करोगे? कितने आके कहते हैं कि बापू, यह मन मर जाए ऐसा करो! मैंने कहा, मेरा ही नहीं मरा! मारना भी नहीं तो मैं तुम्हें क्या बताऊं? मन

अच्छी बात है, खराब नहीं। मन ईश्वर की विभूति है। कृष्ण ने आंख को विभूति नहीं कहा, कान को नहीं, पैर को नहीं, चमडी को नहीं, परंतु 'गीता' में कहा है कि अर्जुन, इन्द्रियों में जो मन है ये मेरी विभूति है। भजन करने के लिए मन चाहिए। बुद्धिविवेक जरूरी है और बुद्धिविवेक के लिए किसी साधुपुरुष की संगत जरूरी है। बहुत से लोग लाल धागा पहनते हैं और फिर निकाल देते हैं! मैं कहता हूं कि आप यहां आनंद के लिए आओ तो ठीक पर यहां आके गुरु की वस्तु को निकाल नहीं दो। तुमने लालबापू का धागा निकाल दिया तो क्या मोरारिबापू खुश हो जायेंगे? कल मुझे एक बहन मिली। बोली, मुझे कंठी दो। तो क्या मैं थेले में कंठी लेके फ़िरता हूं कि तुम कहो और मैं दे दूं! बुद्धि निर्णय नहीं करती और नहीं करे जब तक हम सत्य, प्रेम, करुणा के लिए ऐसे ही नहीं घूमते, अपने इरादे पूरा करने के लिए भटकते हैं। और उसकी आड में हमारी प्रशंसा हो ऐसा चाहते है! ये हमारी दशा है! हम मानव है, जो कमजोरी के पूतले हैं। हम सबको ब्रह्म चाहिए, परंतु इससे पहले प्रतिष्ठा चाहिए, कीर्ति चाहिए! खैर हम मानव है इसलिए इसमें कोई आलोचना नहीं। यह समूह चिंतन, संवाद है। जैसे विनोबाजी कहते है कि 'समूह साधना' करनी चाहिए। जैसे समूह श्रम, समूह शिक्षण, ऐसे ही समूह चिंतन है। ये उपदेश नहीं है। आपके साथ अरस-परस बातचीत है। सचमूच सच्चे दिल से जहां समर्पित हुआ हो वही प्रेम बोलता होगा, भले ही जल्दी या देर से पहुंचे। हमारे लिए ये ही ठिकाना बराबर है। मैं तो अनुभव कर सकता हूं। इसलिए इस तरह कह सकता हूं। अनुभूति होती तो कह कभी न सकता। अनुभव और अनुभूतियों में मेरे 'मानस' के हिसाब से अंतर है। जिसको थोड़ा-बहुत अनुभव हुआ हो तो वह कह सकता है पर जिसे अनुभूति हुई हो वो कुछ भी नहीं कर सकता। 'रामायण' के दो पात्रों को अनुभव कहा है। ये अनुभूति के महापुरुष है। फिर भी इन्हें कुछ कहूंगा तो ही समझ में आयेगा, ऐसा मानकर वो बोलते हैं।

निज अनुभव अब कहहु खगेसा।
बिनु हरि भजन न जाइ कलेसा।।
उमा कहहु मैं अनुभव अपना।
सत हरिभजन जगत सब सपना।।

अनुभव होते हैं तभी तक साधक बोल सकता है कि ये सत्य है और ये सपना है। अनुभूति जिसको होती है उसको सत्य है या सपना है, ऐसे सब द्वंद्व खत्म हो जाते हैं। जो है वो है बस! कोई संज्ञा नहीं रहती, कोई नाम नहीं, रूप नहीं, विशेषता नहीं।

जबरदस्ती से किसी को भिक्षा नहीं दी जाती, शिक्षा नहीं दी जाती और दीक्षा भी नहीं दी जाती। हमें उनके पीछे दौड़ना नहीं पड़ता! अपनी मर्जी से उड़-उड़कर आते हैं और आयेंगे तब निश्चित होगा कि हमारे लिए इसके अलावा कोई ओर चारा नहीं। भगवान की

कथा जहां-जहां होती है। मेरे पूजनीय वक्ता सब कहते हैं, चाहे 'भागवत' हो या अन्य शास्त्र की। उनको खींच-खींच कर कोई लाता है? उड़-उड़कर आते हैं। शिष्य में बुद्धि होनी चाहिए बस, मुझे ये ही कहना है, उनमें विचारशक्ति होनी चाहिए। गुरु अंत:करणमुक्त होते हैं। वहां मन नहीं, बुद्धि का भटकाव नहीं, वहां चित्त का उहापोह नहीं, विक्षिप्तता नहीं और गुरुपद तो वो है जहां अहंकार तो है ही नहीं। पर हमारे जैसों को द्वैत रखना पड़ता है।

अभ्यास जाग्या पछी बहु भटकवुं नहीं पानबाई,
रहेवुं नहीं भेदवादीनी संग...

अश्रु और आश्रय ये दो है। इन्हें साधन कहना भी मुझे अच्छा नहीं लगता। पर साधक के लिए अश्रु और आश्रय इन दोनों ट्रेक पर ही चलना होता है। तो मैं आपके साथ चर्चा करता हूं कि पानी बहुत गहरा ऊतर गया है। हृदयधर्म कहता है कि हृदय भीगा होना चाहिए। हृदय की वाटिका का कूपतत्त्व है वावडी। हृदय ऐसा होना चाहिए कि हम अपने पैरों से चल कर जलतत्त्व प्राप्त कर सके। कठिन साधना नहीं कि जो हम कर भी न सके। और सरोवर; जीवन का अर्थ क्या है? प्रेम सरोवर में मानव डूबकी लगाये ये हृदय की वाटिका की एक व्यवस्था है। प्रेम सरोवर में हम डूबकी मार सकते हैं। ये हृदय की वाटिका जिसे 'मानस-वाटिका' कह सकते हैं।

रावण की अशोकवाटिका में वन है, उपवन है, बाग है अर्थात् आराम है। जनक का बाग आराम का पर्याय माना जाता है। तो हृदय की वाटिका को भी आराम मानना बाप। लंका की अशोकवाटिका में तो कभी जा सकेंगे या नहीं। पर जनक की वाटिका में हम मिथिला जाके कभी जा सकते हैं। 'नंदनवन' में देवताओं की 'अमृतवाटिका' में तो हमें जाना नहीं है। पाताल की विष की वाटिका है। वहां विष ही है।

तो बाप, हृदय की जो वाटिका है ये 'मानस-वाटिका' तब हो जाती है जब 'मानस' का पाठ कहते, कथन करते, 'मानस' का श्रवण करते जो मुझे और आपको अंदर से सचमूच आराम मिले तो समझना कि मेरा मानस ये वाटिका है, 'हृदयवाटिका' है। और शायद ये अनुभव हम सबका है कि हमें गाने से, बोलने से आराम मिलता है। मेरे लिए ये स्पष्ट है कि मेरे लिए आराम यहीं मिलता है। हमारे देश में अनेक ऐसे महापुरुष है कहते हैं कि उन्होंने कभी आराम या वेकेशन नहीं लिया। मैंने पचपन साल से वेकेशन नहीं लिया पर लगातार वेकेशन ही लेता हूं, क्योंकि वेकेशन के लिए जाते है तो मानव को आराम मिलता है न? मुझे मेरी व्यासपीठ में आराम मिलता है, दूसरा कुछ नहीं। वन का अर्थ है जीवन। हमारे यहां एक पद है, इसमें ये दोनों शब्द जुड़े हैं -

जीवन वन अति वेगे वटाव्युं.
द्वार ऊभो शिशु भोळो.
दयामय, मंगल मंदिर खोलो.

जयंत पाठक की यह कविता है, जो मुझे अच्छी लगती है।

दरवाजो खुल्लो हतो,
हुं तो ऊभो हतो.
अंदर जई शकाय एवुं हतुं.
अरे! अंदर लगी जवाय एवुं हतुं एटलुं ज नहीं,
अंतर लगी जवाय एवुं हतुं, जो जवा इच्छत तो.
जो हुं बहार नीकळ्यो होत,
तो सरहद सुधी जवाय एवुं हतुं.
अरे नहीं, अनहद सुधी जवाय एवुं हतुं.
पण न हुं अंदर गयो, न हुं बहार नीकळ्यो!

ऐसी ही कुछ मेरी और आपकी स्थिति होती है।

वन मतलब जीवन। हृदय की वाटिका तब समझना जब हृदय जीवन महसूस करता हो। वैसे तो दिल धड़कता है तो जिंदा है ऐसा निश्चय किया जाता है। पर

ये होते शारीरिक जीवन की बात है। वन मतलब जीवन, हृदय के धर्म में इसका अर्थ है कि प्रत्येक जीव तरफ़, प्रत्येक प्राणी तरफ़ हमारी संवेदना होनी चाहिए। दूसरों की पीड़ा अपनी पीड़ा बननी चाहिए। हम ऐसा कर सकते हैं या नहीं ये मुझे पता नहीं।

जीवन वन है। जीवन जीने के कितने सारे रास्ते है! हृदय की वाटिका का एक तीसरा लक्षण यहां बताया है, 'उपवन।' जिनके हृदय में सचमूच उपवन है, एक मधुरता है, एक मंद शीतल जीवन बह रहा है, जहां बैठने से शाता मिलती है, जहां जाने की इच्छा होती है। ऐसी जगह ही 'हृदयवाटिका' का उपनाम है। 'उप' का अर्थ होता है बहुत नजदीक आ गया। कथा के प्रसंगो के साथ उसका तात्त्विक अर्थ भी हमारे व्यक्तिगत जीवन के लिए समझना, तो हमें ज्यादा फ़ायदा होगा।

तो, हृदय भी एक 'पुष्पवाटिका' है ये याद रखें। पर अशोकवाटिका के साथ जो मन की वाटिका में जब जोड़ते हैं तब सभी मुद्दें तात्त्विक रीत से विचारना पड़ता है। अशोकवाटिका में राक्षस है। जो हनुमान को मारने दौड़ते हैं। राक्षसी सीता को डराते हैं। हृदय के साथ जब अशोकवाटिका की तुलना करते हैं तब हमें भी कुबूल करना पड़ता है कि हमारी हृदय की वाटिका में भी राक्षस है या नहीं ये निश्चित करना पड़ेगा। तुलसी को पूछना पड़ेगा -

मम हृदय भवन प्रभु तोरा।
जहां आई बसे बहु चोरा।।

तुलसी कहते हैं, मेरा हृदयभवन प्रभु तेरा है और इसमें राक्षस आके बैठ गये हैं। और घर को खाली भी नहीं करते, कब्जा जमा के बैठे हैं। हमारे हृदय में भी कामादि विकार भरे पड़े हैं। क्रोध है। ये सब राक्षस है। कोई गुरु अपने हृदय की 'अशोकवाटिका' में आये, और राक्षस हमें परेशान करे, उसको थोड़ा मसल डालें, मूर्छित करे तो हमारे हृदय की वाटिका हमें ज्यादा धन्यता प्रदान करे। बाकी तो सब मारनेवाले तत्त्व हैं। पर सम्यक्ता हो उसे चिंता नहीं होती।

कथा का थोड़ा दौर आगे लेता है। 'अयोध्याकांड' के आरंभ में मंगलाचरण तो है। पर मेरी दृष्टि 'अयोध्याकांड' के आरंभ में ध्यानाकर्षक करने लायक कोई घटना हो तो वो है कि राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न विवाह करके आये तो फिर समृद्धि बहुत बढ़ गई। समृद्धि बढ़े ये अच्छी बात है। राष्ट्र की समृद्धि बढ़नी चाहिए। समाज की, परिवार की समृद्धि बढ़े किसे अच्छी नहीं लगती? परंतु इस समृद्धि के अतिरेक के बाद जो प्रकरण बदलता है 'मानस' में ये शायद मेरे और तुम्हारे लिए कोई संकेत है। बहुत सर्दी हो तो हम थक जाते हैं कि अब तो धूप निकले तो अच्छा। वरसाद से, अकाल से भी हम परेशान हो जाते हैं। अयोध्या में राम विवाह करके आये तो इतनी समृद्धि बढ़ी। तुलसी को लिखना पड़ा कि सुख की बरसात हुई। पर जिस तरह बहुत बरसात पड़े तो नदियों में बहुत पानी आता है और पूरा पानी समुद्र में जाता है। इसी तरह सुख की बरसात खूब हो कि इसके कारण रिद्धि-सिद्धि की नदियों में बाढ़ आती है और नदियां अयोध्यारूपी समुद्र में जाती है। ये सुख का अतिरेक है साहब! और इसलिए ही इस प्रकरण के बाद रामबनवास का प्रकरण आता है। नियति ऐसा करती ही रहती है। समृद्धि बढ़ानी भी चाहिए, परंतु इतना याद रखना चाहिए कि अतिशय सुख के साथ थोड़ी दु:ख की धूप भी होनी चाहिए। इस तरह से रामराज्याभिषेक और रामवनवास इन दो प्रसंगों के बीच ये सूत्र काम कर रहा है। रिद्धि-सिद्धि की नदियों ने अयोध्या के समुद्र को भर दिया ऐसे समय में महाराज दशरथ ने दर्पण में अपना चेहरा देखा तो ख्याल आया कि उनका मुकुट कुछ टेढ़ा हो गया है, जरा झूक गया है। तो देखते-देखते सीधा

किया। सभी मनुष्यों को मुकुट टेढ़ा हो और कोई उतार ले उससे पहले दे देना। बहुत से लोग नहीं होते कि चुनाव में खड़े रहते हैं, लोक सभा में चान्स नहीं मिलता तो राज्यसभा में शुरू करते हैं!

बाप, महाराज दशरथ दर्पण देखते हैं तब तुलसी कहते हैं, उनके कान के पास बाल सफेद हो गये हैं। और ये सफेद बाल राजा के कान में उपदेश देते हैं। हम कोई व्यक्तिगत बात कान में कहते हैं तथा कोई सच्ची सलाह देनी हो तो कान पकड़कर कहते हैं कि तू याद रखना। गुरु मंत्र देते हैं तो कान में देते हैं। ये एक परंपरा है। तुलसी कहते हैं कि ये सफेद बाल होना वृद्धावस्था की निशानी है। सफेद बालों का रूप लेकर बूढ़ापा आज दशरथ के कान में गुरुमंत्र देने के लिए आया है। बूढ़ापा मतलब प्रज्ञावान गुरु। जीवन जिसने पूरा उजला कर दिया हो ये गुरुतत्त्व का नाम सफेद बाल है। दशरथ को लगा कि ये सफेद बाल मुझे कुछ उपदेश दे रहे हैं कि राजन्, अब राम लायक बन गये हैं। अब ये कारोबार, ये दायित्व राम को दे दो। और जीवन सफ़ल बनाने के लिए कोई दूसरा मार्ग पकड़ो। गुरु ने सीख दी। सच्ची बात यह है कि अमुक समय सब संतानों के हवाले कर दो। ईश्वर कितना कृपालु है कि हर उम्र में हमें बोध कराता जाता है। शास्त्र तो सीख देते हैं पर उम्र भी सीख देती है। ये घटना घटी और राजा तुरंत गुरुदेव के पास गये। प्रणाम किया, बापूजी, राम सब तरह से लायक है। और आप आज्ञा करे तो राम का राजतिलक कर दें। वशिष्ठजी कहते हैं, राजन्, बहुत मंगलमय विचार है। धन्य हो। और राम को राज्य देना है तो जल्दी करो। ये ही मुहूर्त मंगल है, जब राम गद्दी पर बैठेंगे। कोई मुहूर्त निकालने की जरूरत नहीं। राज्य राम को देना है तो मुहूर्त दिखाने की जरूरत ही नहीं। दशरथ विचारते हैं कि कल राज्याभिषेक कर देते हैं। ऐसी मुद्दत आई। एक रात बीच में थी।

मेरी आपसे एक विनती है। आपको जिनके चरणों में पूर्ण विश्वास हो, जब तुम कोई निर्णय नहीं ले सको तब बुद्धपुरुष से पूछना और वे बुद्धपुरुष तुम्हारे जवाब में एक ही बात तीन बार कहे। तुम विकल्प खड़े करो फिर भी एक ही जवाब तीन बार आये तो ज्यादा समझदारी किए बिना काम पर लग जाना। फिर भी त्रिसत्य की महिमा है। पर गुरु बोले तो एक ही होता है। तो दशरथ ने कहा कि देर करने की जरूरत नहीं, परंतु रात बीच में आई। और तुलसीदास ने रात को ममता का अंधेरा कहा है। ये ममता की रात आई। कैकेयी को पुत्र की ममता जगी। और ममता की रात ने सुबह रामराज्य के बदले रामवनवास खड़ा कर दिया। पूरी घटना बदल गई। तो बाप, राजा से थोड़ी चूक हो गई। गुरु का संकेत बराबर समझ नहीं पाये। अथवा तो हरि को लीला करनी थी, नियति का निर्णय होगा। कल सुबह राम का राज्याभिषेक करने का निर्णय किया होगा ये बात पूरे नगर में फैल जाती है। बड़ा आयोजन शुरू हुआ और भगवान राम राजा हो उसके लिए उत्सव शुरू हो गया। पर एक रात, ममता पूरी बाजी बिगाड़ जाती है।

बहुत से हृदय ऐसे हैं जो धड़कते हैं। पंप चालू तो है परंतु पानी बहुत गहरा है! ऐसे हृदयों की खुदवाई करेंगे तो ज्यादा से ज्यादा चट्टानें निकलती जाएगी। और उर्दू-फारसी साहित्य में एक शब्द का प्रयोग हुआ है कि ये 'संगदिल' है, पथ्थर दिल है। पूरी दुनिया में संवेदनाओं की बातें होती है। यह देश संवेदनाओं का देश है। हमारा धर्म ही संवेदना का धर्म है। हमारी 'रामायण' भी संवेदना में से जन्मी है। राम भले अग्नि के प्रसाद से जन्मे हो, जानकीजी भले ही जमीन में से जन्मी हो, परंतु इन दोनों के चरित्र का गायन जिसने किया है वो तो एक संवेदना में से ही जन्मा शास्त्र है 'रामायण'।

हम हमारे अंत:करण में एक पुष्पवाटिका निर्मित करें

'मानस-अशोकवाटिका', इस विषय पर हम संवाद करते रहे हैं। जनक की पुष्पवाटिका, रावण की 'अशोकवाटिका'। दोनों में एक बहुत बड़ा साम्य है बाप! जनक की पुष्पवाटिका में सीताजी गौरीपूजा के लिए आई। यद्यपि राम पहले आए थे, पर सीता माँ भवानी की पूजा करने के लिए बाग में आती है। फिर एक सखी बाग देखने के लिए पीछे रह जाती है। उसने राम के दर्शन किये और सीता से राम दर्शन के लिए कहा तथा सीताजी रामजी के दर्शन प्राप्त करती है। राम को प्राप्त करती है। ये तो प्राप्त हुए है हीं, दोनों एक ही है। पर 'रामायण' की लीला के क्रम के अनुसार गिना जाता है कि पहले सीताजी आई। फिर सखी आई और सखी के बाद राम मिले। जीवन की वाटिका का ये सत्य है। इसका अर्थ हुआ कि सीता मतलब भक्ति। हमारे जीवन में भक्ति आई, भवानी का मंदिर श्रद्धा है, इसलिए कोई गुरु जिन्होंने राम को देखा होगा वो हमारे पास आयेगा, हमें जाना नहीं पड़ेगा। ये बहुत सीधा गणित है। सीधा क्रम है। पहले भक्ति या श्रद्धा, फिर गुरु की प्राप्ति और गुरु के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति।

'अशोकवाटिका' में भी वही क्रम आया है। पहले भक्ति आई 'अशोकवाटिका' में। भले ही छाया हो। हमारे जीवन में छायारूपी भक्ति आए तो बहुत फायदा है। मूल रूपी भक्ति को तो हम शायद पचा भी न सकें। ये तो आदिशक्ति है। ये तो राम के पास ही रह सकती है! अपने पास तो उसी छाया आए तो भी बहुत है। जो कि लंका में आई हुई सीता प्रतिबिंब है पर है तो भक्ति, इसीलिए क्रम के अनुसार हमुनाजी आए। हनुमान गुरु है और हनुमानजी आए तो फिर राम आए लंका में। ये सत्य इस घाट को ऐसा लगता है, इस प्रकार की वाटिका प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में बनानी पड़ेगी। अंतिम दिन मुझे इतना कहकर कथा पूरी करके विदा लेनी है। जनकराजा का नगर तो साक्षात् भक्ति है। पुत्री होकर आई है। और वहां सभी ज्ञानी गुणवंत मानव रहते हैं। ऐसा 'बालकांड' में लिखा है। इसीलिए एक पुष्पवाटिका है, दूसरी 'अशोकवाटिका' है। ये सभी त्रेता की घटना है। आज हम कलियु में है। एक 'चमत्कार' शब्द का प्रयोग में करता हूं। आजकल चमत्कार की बातें होती है उसके अर्थ में प्रयोग नहीं करता हूं अथवा तो करूंगा नहीं। प्लीझ, आप गलत समझोंगे क्योंकि आजकल चमत्कार में माननेवालो की बहुमती है! इस दुनिया को साक्षात्कार कहां चाहिए? सबको चमत्कार ही चाहिए! क्यों आज रामराज्य की मांग है? त्रेतायुग में तो ये था ही पर आज क्यों? तुलसीदासजी रहस्य खोलते हैं। 'उत्तरकांड' को खोल के अयोध्या का वर्णन पढ़ो, वहां तुलसीदास ने बहुत ही रहस्यपूर्ण एक पंक्ति लिखी है बाप! हम सब रामराज्य की इच्छा रखते हैं। हम सबके हृदय में रामराज्य कब आएगा? रामराज्य के बाद तुलसी ने एक संकेत किया है। 'सुमनबाटिका'; फिर 'वाटिका' शब्द का अंतिम प्रयोग है यहां। पर तुलसी की दी गई एक आध्यात्मिक अयोध्या की यात्रा करनी पड़ेगी। गोस्वामीजी लिखते हैं-

सुमन बाटिका सबहिं लगाईं ।
बिबिध भाँति करि जतन बनाई ।।

यत्न किया, पुरुषार्थ किया और बहुत प्रकार की जैसी जिसकी रुचि ऐसी एक-एक वाटिका अयोध्यावासीयों ने बनाई है-

लता ललित बहु जाति सुहाईं ।
फूलहिं सदा बसंत कि नाई ।।

तुलसी कहते हैं कि जनक की वाटिका में ऋतु बदलती थी परंतु वसंत कायम रहती थी। बाप! श्रद्धारूपी वसंत एक-दो महिना या त्रिमासिक नहीं होनी चाहिए, कायम होनी चाहिए। और रामराज्य होने के बाद 'फूलहिं सदा' तैल धारावत्; ऐसी जीवन की वाटिका बनाओ कि लोग उसमें अखंड श्रद्धा के साथ निवास करे।

फूलहिं सदा बसंत कि नाई ।।

आओ, मैं और आप 'मानस-अशोकवाटिका' की कथा सुनने के बाद ऐसी जीवन की वाटिका बनाएं। अभी भी देर नहीं हुई और अभी भी शायद नहीं समझे हो मैं या आप, ये मैं बातें करता हूं इसीलिए बोलता हूं बाकी मुझे समझ आ गई या नहीं ये तो मेरे गुरु हस्ताक्षर करे तब पता चले कि अब समझ गया हूं। इसीलिए इतनी बिनती जरूर करूं आपसे कि चौबीस घंटे में से कुछ समय ऐसा रखना, ऐसा अभ्यास करना कि अंत:करण एकदम साफ हो जाए। और जिस दिन अंत:करण एकदम साफ़ होगा जितनी मिनट उस समय गुरु की स्मृतियां उतरने लगेंगी। गुरुकृपा नाचती है, रास लेती है अनंत में परंतु हम रिसिव नहीं कर सकते। गुरु की स्मृतियों का प्रसाद पाने के लिए माला करो, पाठ करो, जरूरी है पर अंत:करण शुद्ध नहीं होगा तो ये नाचती स्मृतियां नाराज होकर लौट जाएगी। ये तो आप सब मेरे हो और कभी-कभी मन भर आता है तब सब कहता हूं।

धा किट धा...धा किट् धा...
धात्रक्...धात्रक्...धिन् धिन् तिन्ना...

एक जबरदस्त स्मृति मेरी इसके पीछे जुड़ी है। पर मैं इतना ही कहूंगा कि ये ताल का नाम है, रुद्र ताल। हमारे तालों में एक ब्रह्म ताल है। पर खास करके ये ताल है रुद्र ताल। और दादा कहते थे कि रावण ने तांडव किया तब ये रुद्र ताल बजाया। बत्तीस मात्रा का ताल है और मेरे लिए तो रुद्र ताल से श्रेष्ठ कौन सा ताल हो सकता है साहब! मेरे दादा मुझे पहले 'रुद्राष्टक' पढ़ा के गए हैं-

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपं ।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ।।

थोडा अंत:करण शुद्ध हो। हम जीव है। एक दिशा में, एक अवस्था में नहीं जी सकते। हम जीते हैं परंतु इस जगत का जो वातावरण है वो बड़ों-बड़ों को मन में तरंगें पैदा

कर देता है! ऐसे समय में हरिनाम, हरि भरोसा, सद्गुरु का आश्रय हमारे अंत:करण को शुद्ध करता है! एक वस्तु याद रखना, ये कलियुग है। सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग में शंकर समाधि में बैठते थे पर कलियुग में शंकर समाधि में नहीं बैठते। ये लगातार मेरी और आपकी तरफ़ ऐसे देखते रहते हैं कि कोई जागे, कोई जागे। कोई मेरा राग सुन ले, कोई मेरा ताल सुन ले, कोई मेरा संकेत समझ जाय। महादेव अभी समाधि नहीं ले सकते। मुझे लगता है कि हमारा ईश्वर जागृत है वो केवल क्षार समुद्र में अब सोता नहीं। थोड़ी श्रद्धा बिल्ट हो अपनी वाटिका में तो गुरु मिलेंगे, गुरु मिलेंगे तो हरि मिलेंगे या फिर गुरु मिल जाए फिर हरि नहीं मिले तो भी चलेगा। लेकिन अब कहां पूरा मिलता है और मिलता हैं तो कहां पहचान पाते हैं?

तो बाप! हम सबके अंत:करण में एक 'पुष्पवाटिका' होती है। अलग-अलग प्रकार की सबकी रुचि के अनुसार हम एक ऐसी वाटिका का निर्माण करे कि जिसमें अल्लाह रहे, जिसमें निरंतर हमारी अटूट श्रद्धा रहे। हम तो हमारी इच्छाएं पूरी हो जब तक श्रद्धा और पूरी हो जाए फिर जय सीयाराम! अथवा ना हुई हो तो सदा के लिए जय सीयाराम! ऐसे ही जगत चलता है। इसीलिए कई बार होता है कि हम कहां है? कैसे समाज में जी रहे हैं? खैर! पर आनंद बहुत आता है कथा गा के, सुन के आनंद ही आनंद है। हम ऐसी वाटिका बनाए जिसमें सभी भेद, राग-द्वेष, विचित्र वृत्तियां शांत हो जाए और थोडा अंत:करण शुद्ध हो। तो ऐसे रुद्र ताल पर शंकर नाचे ऐसा जीवन हो सके। संक्षिप्त में कहूं तो अल्लाह करे, अपना विश्वास श्रद्धा अखंड बने। हम जीव है, हमारे कुछ काम नहीं होते तो भगवान पर भी गुस्सा नहीं आता कि कैसा भगवान है! कुछ होता ही नहीं! तो बाप! 'पुष्पवाटिका' या 'अशोकवाटिका' ये 'रामायण'काल की वाटिका है अथवा तो 'समन बाटिका सबहिं लगाई।' रामराज्य के समय व्यक्तियों ने फूलवाटिका अपने-अपने आंगन में लगाई। हम त्रेता मे नहीं, कलियुग में है। कथा गायन के बाद हम हमारे हिसाब से वाटिका लगाए कि जिसमें श्रद्धा हो।

कल हमने कथा के क्रम में देखा कि महाराज दशरथजी ने राज्य का भार राम को सोंपने का निर्णय किया। कैकेयी की ममता ने रामराज्य की पूरी बाजी पलट दी और वनवास खड़ा कर दिया। दूसरे दिन जब राजतिलक होना था तब भगवान केा वन में जाने को हुआ। सीताजी भी साथ में तैयार हुई। लक्ष्मण भी अयोध्या में रहे ऐसा नहीं था। पूरी अयोध्या को बहुत बड़ा झटका लगा। राम, लक्ष्मण, जानकी सुमंत के साथ सरयू के तट पर आते हैं। अत्यंत सुख आख़िर वनवास का निर्माण करता है। भगवान गंगा के किनारे आए। गंगा पार करने के लिए नौका मंगाई और केवट प्रभु से कहते हैं कि मैं आपका भेद जानता हूं। हरि का भेद कोई नहीं जानता और एक निषाद कहे, मैं आपका भेद जानता हूं! केवट के प्रेम में लपेटे हुए अटपटे बोल सुनकर भगवान हंस पड़े। सीता, लक्ष्मण के सामने देखकर प्रभु हंसे, 'रामायण' में ऐसे भक्त भी है जो भगवान को हंसाते हैं। ऐसे भी भक्त है जो भगवान को रुलाते हैं। ऐसे भक्त भी है जो संकोच में डाल देते हैं। ऐसे भी भक्त है जो भगवान को खड़ा कर देते हैं। कितने प्रकार के भक्तों सृष्टि पर है! ये तो भक्तों की वाटिका है।

तो बाप! केवट ने भगवान के चरण धोए। आनंद से भगवान को सामने किनारे पर ले गए। भगवान मुद्रिका देते हैं तब केवट कहता है, आज मुझे क्या नहीं मिला? अमित काल से मैं मजदूरी करता हूं। आज आपने सब कुछ दे दिया। मैं उतराई नहीं लूंगा। एक काम करो, आप वापस आओ भगवान, तब मजदूरी नहीं, जो प्रसाद दोगे वो ले लूंगा। सिर पर चढाउंगा। भगवान वहां एक रात रुके। दूसरे दिन शिवजी का पूजन किया फिर वहां से भगवान पदयात्रा का आरंभ करते हैं। राम, लक्ष्मण, जानकी भरद्वाजऋषि के आश्रम में पधारे। भगवान भरद्वाजजी से कहते हैं कि अब हम किस मार्ग पर जाए,

कृपा कर मार्ग बताईए। भगवान एक ऋषि से मार्ग पूछते हैं। भरद्वाज कहते है कि भगवान, मैं आपको क्या मार्ग बताउं? आप तो जिस रास्ते पर चलो वो सुगम है फिर भी जगत को बोध कराने के लिए बताया। बहुत से शिष्य मार्ग दिखाने के लिए तैयार हुए। उनमें से चार को पसंद किया। मार्ग तो चार वेद बताते हैं। सब सूत्र बताते हैं पर भरद्वाजजी ने चार शिष्यों को पसंद किया। संतों के पास से सुना है कि चार वेद है जिसके मार्ग पर राम चले। भगवान ने बिदा ली। भरद्वाजजी के चार शिष्य सबको वापस भेजते हैं, कौन ऐसा आया कि ये सब वापस आ जाते हैं? एक तपस्वी आया पर ये कौन था?

मनहुँ प्रेम परमारथ दोऊ ।

ये तपस्वी और राम दोनों गले मिलते हैं तब तुलसी कहते हैं, आज ऐसा लगता है कि प्रेम और परमारथ एक-दूसरे से मिलते हैं। राम परमारथ है।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा ।

ये तो सिद्ध है, ये तपस्वी प्रेम है ऐसा तुलसी से लिखा गया। एक बात सच है। मनुष्य के जीवन में जब प्रेम आता है तो वेद भी वापस लौट जाते हैं, मार्गदर्शक भी वापस लौट जाते हैं।

ऐसे यात्रा करते-करते भगवान वाल्मीकि के आश्रम में पधारे। वाल्मीकि को बहुत आनंद हुआ। मंगलमूर्ति के दर्शन करके दूसरे दिन प्रभु ने वाल्मीकिजी से पूछा कि हम कहां रह सकते हैं, वो स्थान बताएं। हमें चौदह वर्ष निवास करना है। वाल्मीकि कहते हैं कि मैं तुम्हें रहने की जगह बताउं पर तुम बिन कौन-सी खाली जगह है ये पहले बताओ। आप तो समग्र ब्रह्मांड में व्याप्त हो। फिर चौदह आध्यात्मिक जगह बताई कि ऐसा हो वहां तुम्हें रहना है। ये सब वाल्मीकि की चौदह प्रकार की भक्ति है, ऐसा भी कह सकते हैं। राम, लक्ष्मण, जानकी चित्रकूट पधारे हैं।

सुमंत अयोध्या वापस आते हैं। उनकी मनोदशा का वर्णन तुलसीदासजी ने बहुत मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किया है। सांज होती है, थोड़ा अंधेरा हुआ, अवसर पाकर सुमंत दशरथजी के भवन में जाते हैं। पूरी अयोध्या महल को घेर लेती है कि क्या समाचार होगा? धीरे-धीरे समाचार आते हैं, महाराज ने जीवन की आशा छोड़ दी है। कौशल्याजी समझ गई कि सूर्यवंश का सूर्य अस्त होने की तैयारी में है। अवधपति ज्यादा अस्वस्थ होते जाते हैं। ब्रह्म ने जिसे पुत्र बनाया ऐसा बाप आज बिदा लेते हैं। अयोध्या अनाथ बन गई! संस्कार करनेवाला एक भी पुत्र घर नहीं। भरत, शत्रुघ्न ननिहाल में थे। दूत जाते हैं। दोनों भाई अयोध्या की यात्रा शुरू करते हैं। भरत को लगा कि पहले उन्हें राम से मिलना चाहिए इसीलिए कौशल्या के घर नहीं गए, क्योंकि राम अभी कैकेयी के पास होंगे ऐसा सोचकर सीधा कैकेयी के पास गए। पूरी अयोध्या चूप है। खाली दो व्यक्ति ही प्रसन्न थे, कैकेयी और मंथरा। बहुत कुछ बोलते हैं भरत कैकेयी के प्रति और फिर हृदय विदारक भरत का आत्मनिवेदन आता है। वशिष्ठजी सबको सांत्वना देते हैं। भरत गुरु की आज्ञा अनुसार पिताजी के बाद जो कुछ करना चाहिए वो सब करते हैं। फिर एक सभा मिलती है।

पूरी अयोध्या चित्रकूट जाती है। वहां एक प्रेमनगर बस गया। ईधर जनकराज को भी ये समाचार मिला तो पूरा जनकपुर भी वहां पहुंच जाता है। भरत ने सामने से ही कह दिया कि प्रभु, आपका मन प्रसन्न हो उस तरह हमको निर्णय देना। ये शरणागति का सूत्र है। और इस लेवल पर पहुंचने में बहुत देर लगती है।

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं ।
सादर भरत सीस धरि लीन्हीं ।।

अंत में भगवान कृपा करके पादुका दे देते है। पादुका खरीद नहीं सकते। वो तो कृपा से ही मिलती है। पादुका इस देश की शरणागति का बडा आधार है। श्री भरतजी पादुकाओ को सिर पर रखकर अयोध्या वापस आते है। भरत प्रभु की दिव्य पादुकाओं को दिव्य सिंहासन पर रखकर राज्य उन्हें सोंप देते है। पादुकाओ से

पूछ कर राजकार्य करते हैं। पादुका मार्गदर्शन करती है। हां, शरणागत को पादुका किसी न किसी भाषा में उत्तर देती है। उसके संकेत अलग होते हैं। जितना हमारा अंत:करण शुद्ध होगा उतना ही संकेत समझ में आता है। ऐसा संकेत विवेकानंदजी को हुआ था। ऐसा संकेत स्वामी आनंद को हुआ था। जब हमारा अंत:करण शुद्ध हो तब संकेत उतरते हैं।

'अरण्यकांड' में भगवान अत्रि ऋषि के आश्रम में आए और फिर वहां से अनेक संतों को मिलते-मिलते कुंभज ऋषि के पास वार्तालाप करके पंचवटी में निवास करने लगे। पंचवटी में एक बार भगवान राम से लक्ष्मण ने पांच प्रश्न पूछे। भगवान उन्हें 'रामगीता' सुनाते हैं। फिर शूर्पणखा आई, दंडित हुई। खर-दूषण आया, उसको निर्वाण दिया, शूर्पणखा रावण को उकसाती है और रावण सीता के अपहरण की योजना बनाता है। यहां लक्ष्मणजी फल-फूल लेने गए तब रामजी ने सीता से कहा, देवी, आप अग्नि में समा जाओ। मुझे ललित नरलीला करनी है। जानकी अग्नि में समाती है। फिर यहां रावण आता है। सीता का अपहरण होता है। गीधराज जटायु शहीद होते हैं और रावण सीता को ले जाता है।

तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ ।

अशोक नाम के वृक्ष के नीचे 'अशोकवाटिका' में सीता को बिठाते हैं। इस तरफ जानकीविहीन कुटिया देखकर भगवान प्राकृतलीला करके रोते-रोते सीता की खोज में आगे बढते हैं। जटायु मिले जो सारी बातें करते हैं। जटायु का अग्निसंस्कार राम करते हैं। जटायुजी सारूप्यमुक्ति पाते हैं। इस तरफ भगवान पंपासरोवर आए। शबरी के आश्रम में प्रभु गए। नवधा भक्ति की बात हुई फिर पंपा सरोवर में नारद मिलते हैं। 'अरण्यकांड' पूरा होता है।

'किष्किन्धाकांड' में ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव रहते हैं। हनुमान के माध्यम से राम और सुग्रीव की मैत्री होती है। वालि का निर्वाण। सुग्रीव को राज्य। अंगद को युवराजपद। चार्तुमास प्रभु ने प्रवर्षण पर किया। चार महिने बाद जानकी की खोज की योजना बनी। सब दिशाओं मे रींछ-वानर जाते हैं जिनके नायक अंगद है, मार्गदर्शक जामवंत है और बिल्कुल पीछे रहकर काम करनेवाले हनुमानजी को मुद्रिका दी। सीता की खोज करते-करते ये टुकड़ी समुद्र किनारे संपाति के पास पहूंचती है। संपाति ने मार्गदर्शन दिया कि अशोकवाटिका में जानकी है। जामवंत ने मार्गदर्शन दिया, हनुमानजी सीता की खोज के लिए तैयार होते हैं। 'सुन्दरकांड' का आरंभ होता है। लंका में जा के सीता की खोज करते हैं। विभीषण से मुलाकात हुई। उन्हों ने युक्ति बताई-

करि सोइ रूप गयेउ पुनि तहवाँ ।
बन असोक सीता रह जहवाँ ।।

माँ से मुलाकात। माँ का आशीर्वाद। फल खाएं और राक्षसों ने शिकायत की। हनुमानजी को बांधा। पूंछ में आग लगाई। पूरी लंका उलट-पुलट हो गई, हनुमानजी माँ के पास से चूडामणि लेकर वापस आते हैं। सब राम के पास आते हैं। जामवंतजी ने राम को हनुमानचरित्र की कथा सुनाई। भगवान हनुमानजी को हृदय से लगाते हैं और कहते हैं कि अब देर ना करो और महाअभियान शरू होता है। इस तरफ रावण को विभीषण समझाते हैं पर रावण नहीं माना। लात मारी। विभीषण प्रभु की शरण आता है। भगवान शरण में रखते हैं। फिर विभीषण से पूछा जाता है कि समुद्र पार कैसे किया जाए। कहा कि महाराज, हमारे कुल में समुद्र पूजा होती है। आप तीन दिन उपवास कीजिए और समुद्र मार्ग दे तो बल का उपयोग नहीं करना है। तीन दिन प्रभु व्रत करते हैं, समुद्र अपनी जड़ता छोड़ता नहीं है और भगवान धनुष-बाण चढ़ाते हैं। समुद्र शरण में आता है। प्रभु को सेतुबंध का विचार अच्छा लगा और समुद्र वहां से विदा लेता है।

'लंकाकांड' के आरंभ का वर्णन है। फिर सेतुबंध बंधता है। भगवान शिव की स्थापना करने का विचार प्रभु ने किया। स्थापना हुई। भगवान की सेना लंका पहुंचती है। सुबेल पर भगवान रुके थे। इधर रावण

अखाडे में आया। मंदोदरी ने रावण को निज भवन में समझाया पर रावण नहीं माना। दूसरे दिन अंगद समाधान के लिए गए। संधि सफल नहीं हुई। युद्ध अनिवार्य हो गया, भयंकर युद्ध हुआ, एक के बाद एक योद्धा मृत्यु को प्राप्त होते गए। अंत में रावण और राम का तुमुल युद्ध हुआ। इकत्तीस बाण प्रभु ने चढाएं। दस मस्तक, बीस भुजाएं, इकत्तीसवां बाण रावण की नाभि में। प्रासादिक प्रहार किया। रावण का तेज प्रभु के चेहरे में समा गया, मंदोदरी आई, पति की मृत्यु देखकर राम की स्तुति की, भगवान राम ने मित्रों को, अनुज को भेजकर विभीषण का राजतिलक कराया। जानकीजी को खबर मिली। जिस

अग्नि के पिटारे में जानकी ने खुद का स्वरूप रखा था उस पिटारे में से वापस मूल रूप प्रगट हुआ। भगवान के पास जानकी पधारती है। पुष्पक विमान तैयार हुआ और उडान भरी। मुनिओं को मिलते-मिलते प्रभु का विमान शृंगबेरपुर उतरता है। हनुमानजी अयोध्या में भरत को समाचार देने गए। वहां 'लंकाकांड' पूरा होता है।

'उत्तरकांड' के आरंभ में पूरी अयोध्या विह्वल है। इसमें भरतजी को बचाने के लिए हनुमानजी आ गए। समाचार दिया कि भगवान पधार रहे हैं। पूरी अयोध्या में बात पहूंचती है। प्रभु विमान में से उतर कर जन्मभूमि को प्रणाम करते हैं। बंदर और विभीषण इस अयोध्या की भूमि पर उतरे जब मानवरूप धारण किया। संतों इस पूरी घटना को कहते हैं कि भगवान की पूरी लीला मानवता निर्मित करने की लीला है। मानव मानव होना चाहिए। भरत और राम गले मिलते है तो करुणा छा जाती है। भगवान को लगा कि मैं सबसे व्यक्तिगत गले मिलूं तो संतोष होगा। और इसीलिए-

अमित रूप प्रगटे तेहि काला ।
जथा जोग मिले सबहि कृपाला ।।

अमित रूप ले के प्रभु सबसे मिले। माँ कैकेयी के घर पहले गए फिर कौशल्या के यहां पधारे। जानकी का कृश देह देखकर सभी माताओं की आंख भर आई। वशिष्ठजी पधारे और ब्राह्मणों से कहा कि आज ही राजतिलक कर देते हैं। एक दिन की देरी चौदह वर्ष रामराज्य को पीछे ले गई। सभी ने स्नान किया। दिव्य वस्त्र, अलंकार धारण किए। दिव्य सिंहासन वहां ले आए। जन्मभूमि, माताएं, गुरुदेव, ब्राह्मणों, दिशाएं, प्रजा, आकाश, सूर्य ये सबको भगवान प्रणाम करके अयोध्या के राज्य सिंहासन पर सीता के साथ विराजमान होते हैं। और विश्व को रामराज्य देकर वशिष्ठजी ने राजतिलक किया-

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा ।
पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा ।।

रामराज्य का तिलक हुआ। जयजयकार हुआ। वेदों ने भगवान की स्तुति की। फिर भगवान शंकर खुद कैलास से दरबार में प्रभु की स्तुति करने आए। बार-बार भक्ति का वरदान मांग कर शिवजी कैलास गए। दव्य रामराज्य की स्थापना हुई।

सुमन बाटिका सबहिं लगाई ।

सब ने खुद की वाटिका बनाई है। ये वाटिका होगी तो भक्ति आएगी। भक्ति आएगी तो गुरु आएंगे। गुरु आएंगे तो हमेशा के लिए राम और श्रद्धा टिकी रहेगी। ऐसी यात्रा बताई है। हनुमानजी रुके हैं। बाकी सब विदा लेके चले गए। समयमर्यादा पूरी हुई। रामजी की ये नरलीला है। जानकी ने दो पुत्रों लव-कुश को जन्म दिया। सीताजी के दूसरे समय के त्याग आदि की कथा को तुलसी 'मानस' में लेते नहीं, सीता-राम की ये छबि कायम लोकहृदय में रहे इतना ही तुलसी स्वीकार्य है। फ़िर तो कागभुशुंडिजी महाराज का चरित्र, गरुड की जिज्ञासाएं, प्रश्न ये सब कथा है। आखिर में भुशुंडि गरुड के पास कथा को विराम देते हैं। भगवान शिव पार्वती के आगे कथा को विराम देते है। याज्ञवल्क्य महाराज कथा को विराम देते है ये बहुत स्पष्ट नहीं है। शरणागति के घाट पर बैठकर तुलसी खुद के मन को समझाते-समझाते कथा को विराम देते हैं। गोस्वामीजी ने भी कथा को विराम दिया।

नौ दिन से हम इस गौमाता के स्थान में कथागान कर रहे हैं। पूज्य लालबापू की चेतना और उनके सेवक समाज को ऐसा मनोरथ जगा कि एक कथा इस स्थान में हो। और ये कथा भगवान की कृपा से अच्छी तरह से संपन्न हुई है तब मैं भी मेरे घाट पर से विदाई लेने जा रहा हूं। आप सबने अच्छे ढंग से कथा का श्रवण किया। सब तरह से भगवान की कृपा से अच्छा आयोजन हुआ और आज भगवान की कृपा से कथा विराम की ओर जा रही है। नौ दिन तक यहां से गाया, आप सब ने सुना। अब तो बोल आपके हाथ में है। आपने बराबर फिल्डिंग की हो, बराबर बोल को पकड़ा हो और ये आपको आपके जीवन की रीत के हिसाब से लगा हो कि नहीं कुछ करे तो अच्छा है। आप ऐसा कुछ विचारोगे तो जीवन में अभी जो है उससे ज्यादा प्रसन्नता तथा आनंद प्राप्त कर सकेंगे।

तो बाप! बहुत शांति से आपने श्रवण किया इसका मुझे आनंद है। और ये प्रेमयज्ञ बहुत ही अच्छे प्रकार से संपन्न हो तथा हनुमानजी को विदाई दें उससे पहले नौ दिन का जो सुक्रीत इकठ्ठा हुआ है वो आओ, मैं और आप मिलकर, गौमाता इसका लक्ष्य है इसीलिए पूरे जगत की, विश्व की गायों के चरणों में ये फल रखें कि गौमाता, ये फल आप स्वीकारे। और गौमाता का आशीर्वाद हमारे उपर विशेष रूप से उतरे कि हम गाते रहे, श्रवण करते रहे, भगवान प्रेरणा दे कि ऐसे अनोखे काम हम करते रहे।

हम सबके अंत:करण में एक-एक पुष्पवाटिका होती है। अपनी-अपनी रुचि के मुताबिक खुद ऐसी एक वाटिका निर्मित करे अंत:करण में। और अल्लाह करे, उसमें हमारी निरंतर अटूट श्रद्धा रहे। यहां तो हमारी इच्छाएं या काम पूरे हो वहां तक हमारी श्रद्धा और पूरी हो गई उसके बाद जय सीयाराम! अथवा नहीं हुआ हो तो हंमेशा के लिए जय सीयाराम! ऐसे ही जगत चलता है! इसीलिए कितनी बार ऐसा लगता है कि हम हैं कहां? कैसे समाज के बीच में जी रहे हैं हम? खैर! हमारे जीवन में कोई ऐसी वाटिका बने। अल्लाह करे, हमारी श्रद्धा, हमारा विश्वास अखंड बने।

मानस-मुशायरा

लगता तो बेखबर-सा हूं लेकिन खबर में हूं।
तेरी नज़र में हूं तो सब की नज़र में हूं।

– वसीम बरेलवी

उलझनों में खूद ऊलझ कर रह गए वो बदनसीब,
जो तेरी ऊलझी हुई झुल्फों को सुलझाने गए।

– बादशाह जयपुरी

मुझे जितनी जरूरत थी वो उतना हो गया मेरा।
फिर उसके बाद वो किसका वो अल्लाह जाने या वो जाने।

– राज कौशिक

ज़िंदगी शम्मा की मानिंद जलाऊंगा 'नदीम',
चराग हूं, बुझ तो जाऊंगा लेकिन सुबह करके जाउंगा।

– नदीम

मेरे राहबर मुझको गुमराह कर दे,
सुना है कि मंज़िल करीब आ गई है।

– खुमार बाराबंकवी

वो बूढा भिखारी दुआओं के ज़रिए
मेरी गर्दिशों को रफू कर रहा है।
जो सोंपा गया था कभी आंसूओं को
वो ही काम मेरा लहू रहा है।

– मिलिन्द गढवी

क्वचिदन्यतोऽपि

साधना करने के लिए किसी युनिफार्म की आवश्यक्ता नहीं है

शिशुविहार, भावनगर द्वारा आयोजित नागरिक सम्मान समारोह में मोरारिबापू का प्रासंगिक प्रवचन

सर्वप्रथम पूज्य मानदादा की चेतना को मेरा प्रणाम। हम सब से बिदा ले गए प्रेमशंकरबापा के निर्वाण को भी मेरा प्रणाम। जागरूक महानुभव जो अपने-अपने क्षेत्र में काम करते हैं उनकी वंदना करने हेतु हम एकत्र हुए हैं। यह मेरा सद्भाग्य है कि मैं भी उपस्थित रहता हूं। इसबार जिनकी हम वंदना कर रहे हैं ऐसे छः महानुभाव अपने-अपने क्षेत्र में माहिर है। उनकी प्रतिभा को मेरा प्रणाम। शिशुविहार संस्था के आदरणीय बुज़ुर्ग श्री नानुभाइ बता रहे थे कि बापू, हम इसमें कोई बडी राशि नहीं दे सकते। थोडा-सा प्रवासखर्च और कुछ मिलाकर हम पंद्रह देते हैं। मुझे लगता है इनमें से कोई भी धन राशि का आदमी नहीं है। 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं'; बाकी राशि से इन लोगों का सम्मान हो ही नहीं सकता। मैं साक्षी हूं कि अपने-अपने क्षेत्र में ये कितनी बड़ी तपस्या कर रहे हैं! एक-दो कार्यक्षेत्र मेरे लिए नए हैं। पर आज मैं जानकर, पढ़कर प्रसन्न हुआ। 'रामायण' में लिखा है, पुरुषार्थ षड्मुख है। पुरुषार्थ के छः मुख है-

जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा ।
तेहि हेतु मैं वृषकेतु सुत कर चरित संछेपहि कहा ।।

तुलसी कहते हैं, पूरे जगत को पता है कि शिव-पार्वती के पुत्र कार्तिकेय षड्मुख है। छः मुख यह जरा चमत्कार सा लगे। लेकिन तुलसी परंपरावादी नहीं पर व्यावहारिक है। किसी ने कहा है कि वे लकीर के फ़कीर है। ये उन लोगों का मानना है! तुलसी एक ऐसे फ़कीर है जिन्हों ने समयनासुार अनेक लकीरें खींची है। इसमें एक लकीर यह हैं कि पुरुषार्थ को छः मुख होते हैं। अभी छः मुख का वर्णन करने का अवकाश नहीं है। यहां यह कथा भी नहीं है। ऐसे प्रसंग पर आदरणीय बुज़ुर्ग लोग मुझसे कहते हैं

बापू, आप बैठकर बोलिए। यदि ऐसा करूं तो भूल जाऊं कि यह कथा नहीं है और मैं चार घंटे बोलता ही रहूं! इसीलिए मैं खडे रहकर ही बोलता हूं। आज हम नए षड्मुख पुरुषार्थ की वंदना कर रहे हैं। गोरज का मैं साक्षी हूं। विद्युतभाई से मैं परिचित हूं। माँ तो हमारी माँ है। अच्छी तरह से परिचित हूं। सभी अपने-अपने क्षेत्र में पुरुषार्थ कर रहे हैं। पुरुषार्थ के छः मुख में से एक का नाम 'नमित्तमात्रं भव शक्ति सर्जनाम्।' केवल निमित्त होना यह पुरुषार्थ का एक मुख है।

ऐसा कहा जाता है कि जब धर्मराज को पूछा गया कि 'महाभारत' का युद्ध आप चाहे तो कितने दिनों में समाप्त कर सकते हैं? धर्मराज ने कहा, इतने दिनों में मैं अपनी पूरी ताकत लगा दूं तो हो सकता है। भीमसेन ने इतना समय बताया। दुर्योधन ने कहा, इतना समय लगे। अजुर्न ने कहा निमिषमात्र में मैं युद्ध जीत लूं। कृष्ण के चहेरे की प्रसन्नता देखकर किसी पत्रकार ने पूछा होगा यह आदमी निमिषमात्र में जीत ले तो आप प्रसन्न हुए, क्या यह सच है? कृष्ण ने कहा, जो निमिषमात्र में कार्य कर ले तो एक मुख निमित्त है। मुझे लगता है अपने-अपने क्षेत्र के माहिर महानुभव हमें बिलग-बिलग क्षेत्र की प्रेरणा देते हैं। वे निमित्त बन कर काम करते हैं। यह एक सच्ची दिशा का पुरुषार्थ है। ऐसे छ; पुरुषार्थियों का जब हम सम्मान करते हैं तब मानव में रही हुई तीन वस्तु यदि गंगा की तरह दूसरों को पवित्र न करे तो बाकी सब निरर्थक है साहब! दूसरी है कीर्ति; जिस क्षेत्र में कीर्ति मिली हो हमारे पुरुषार्थ से, प्रारब्ध ने भी साथ दिया हो, साथ में प्रभुकृपा रही हो तभी सफलता है। ये लडकियां गीत गाती थी उसमें कृपा की मांग थी। हमें मिली कीर्ति यही परमात्मा की कृपा है। कीर्ति में पद, प्रतिष्ठा, जयजयकार, वाह-वाह सब कुछ आ जाता है। कीर्ति बड़ा व्यापक क्षेत्र है। दूसरा है, 'भनिति।' साहित्य-कविता और भूति-ऐश्वर्य, संपत्ति ये तीनों वस्तु गंगाप्रवाह की तरह 'सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय' न बहे तो इसका कोई मूल्य नहीं है।

मुझे लगता है, यहां किसी ने साहित्य की सेवा की है तो किसी गुरुजन परमात्मा की कृपा से कुपोषण निवारण के लिए सेवा कर रहे हैं। अलग-अलग क्षेत्रों में सेवा हो रही है। यह गंगा की तरह प्रवाहित होना चाहिए। यहां जिनका सन्मान हो रहा है उनका हेतु भी गंगा की तरह प्रवाहित होना है। 'चरैवेति।' इससे मुझे ज्यादा प्रसन्नता हो रही है। ऐसा करना मुझे पसंद है। क्यों न हो? पैसा कोई दे, दुपट्टा कोई दे,, पुस्तक का थैला कोई दे, चेक कोई दे! मैं तो केवल हाथ छू आता हूं। ऐसा किसे पसंद न हो? बिलकुल मुफ्त में, यार! ऐसे कार्य में भले हमें ज्यादा उपयोगी न होते हो तो भी ऐसे कार्यों में थोड़ा स्पर्श करना मिले तब हो इससे ज्यादा पवित्र हो जाते हैं। भगवान वेद व्यास ऐसा कहते हैं। मेरा सबसे बडा फायदा यह है कि सब के साथ बैठने का आनंद मिलता है। उनके बारे में सुनने से आनंद होता है। उनके कार्यक्षेत्र समझने से आनंद होता है।

इन छः व्यक्तियों का सम्मान देखकर मुझे व्यास के छः सूत्र याद आते हैं। जिन्हों ने मानवता को केन्द्र में रखकर सामाजिक कार्य किए हो उनके पास बैठने से हमारे अंदर छः प्रकार के केमिकल्स बदले जाते हैं। भगवान वेद व्यास को कोई कौम-धर्म लागू नहीं होता। कोई देश भी नहीं। वेदव्यास का व्यक्तित्व आकाशी हैं। 'नमोस्तुते व्यास विशाल बुद्धे।' वेदव्यास का मंतव्य है कि हम में कुछ परिवर्तन आए, हम बुद्धपुरुषों के पास बैठे। जैसे गांधीबापू के पास बैठनेवालों के कितने केमिकल्स बदल जाते हैं! महामुनि विनोबाजी के पवनार आश्रम में जानेवाले विदेशी कहते थे, हम आश्रम में प्रवेश करे और हमारे भीतर हलचल पैदा हो जाती है। कोई परिवर्तन आने लगे। मानवता को केन्द्र में रखकर जिन्हों ने विश्वचिंता की है उनका जीवन यज्ञकार्य में लगा हुआ है। उनके साथ निकट बैठने से हमें काफ़ी फायदा होता है। यदि सभी दिशाओं के द्वारा वंदन किए हो, सत्य स्वीकारने की तैयारी हो तो छः वस्तु बढ़ती है। जिन महापुरुषों ने अहेतु प्रेम किया है विश्व से, ऐसी किसी पुरुषार्थी व्यक्ति जिसने मानवता को केन्द्र में रखकर काम कियाहो। मैं तुलसी को क्यों पसंद करता हूं? उनके घर से मुझे कोई मनीओर्डर नहीं आता! वह कोई वस्तु भी नहीं भेजता! मैं क्यों उन्हें केन्द्र में रखता हूं? क्योंकि तुलसी का केन्द्र मानव है। और ये मानबापा का केन्द्र मानव है। निरंतर मानव है। गांधीबापू का केन्द्र मानव है। विनोबाजी का केन्द्र मानव है। वेद में जिस विश्वमानुष की उद्घोषणा है विनोबाजी उसी की बात करता है। विनोबाजी उसी मूर्ति को हमारे सामने रखने की पूरी कोशिश करते हैं। 'रामचरित मानस' का प्रथम शब्दब्रह्म 'वर्ण' है-

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ।।

मुझे दादा कहते थे भविष्य में कोई पूछे कि 'रामायण' का वर्ण क्या है? ब्राह्मण? क्षत्रिय? वैश्य? शुद्र? तो 'रामायण' का वर्ण कौन-सा है? मेरे दादा कहते थे प्रथम शब्द ब्रह्म वर्ण है। 'रामचरित मानस' जहां पूरी हो-

श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः ।।

वहां आखिरी शब्द 'मानव' है। जगत जान ले कि 'रामायण' का वर्ण केवल मानव है। और कुछ नहीं। मैं कथा में कहता रहता हूं कि हनुमान, नील, बानर ये सभी; विभीषण राक्षस, जामवंत भालू ये सभी बहुत दूर फेंके गए हैं इन सभी को रावणी आसुरी वृत्ति को दूर करने के लिए मानव बनाने का काम राम ने किया है। अभी दशहरा के अवसर पर टी.वी. इन्टरव्यू में मुझे पूछने लगे कि मैं दशहरा के बारे में क्या कहता हूं? मैंने ना की तो कहने लगे, 'बापू, कुछ तो बोलिए।' मैंने कहा, दशहरा को लेकर सभी कहते हैं कि असत् पर सत् का विजय है। आसुरी वृत्ति पर सुरी तत्त्व का विजय है। अभद्रता पर भद्रता का विजय है। अदैवी शक्ति पर दैवी शक्ति की विजय है। यह सब अच्छा है, सच है। लेकिन मुझे लगता है कि दुर्वाद, विवाद और अपवाद पर संवाद की विजय है। रावण ने क्या किया? दुर्वाद किया।

सन्यपात जल्पसि दुर्बादा ।
भएसि कालबस खल मनुजादा ।।

अंगद जैसे बंदर ने आह्वान किया कि तू दुर्वाद करता है। तेरे मुंह में अपवाद की दुर्गंध है। किसीका वक्तव्य सहन नहीं कर पाता तब तू दुर्वाद करता है। तू बकवास करता है। इसके सामने संवाद का विजय दशहरा है। यह चमत्कार नहीं है। 'मानस' में स्पष्ट लिखा है कि जब लंका से पुष्पक अयोध्या की भूमि पर उतरा और भगवान जब नीचे उतरे तब उनके पीछे हनुमान, अंगद, सुग्रीव, नल, नील, जामवंत, विभीषण, केवट, निषाद ये सब आए तब तुलसी लिखते हैं, ध्यान दीजिए साहब-

धरे मनोहर मनुज सरीरा ।

इनमें से कोई बंदर, भालू, असुर नहीं था उसका सभी मनुष्य का शरीर धारण करके आए थे। 'रामायण' मानव बनाने की फार्म्यूला है। उसका केन्द्रीय विचार मानव है। यह मानदादा, प्रेमशंकरदादा, महात्मा गांधीबापू, विनोबाजी ये सभी मानव को केन्द्र में रखते जागृत मानव है। हाल में ही बहन ने उल्लेख किया, ये जागृत मानव है, जिन्हों ने विशिष्ट साधना की है। साधना करने के लिए किसी युनिफार्म की आवश्यक्ता नहीं है। युनिफार्मवाले तो साधना कम करते हैं! साहब, भावनगर में हाफपेन्ट पहनकर साधना कर गया! मानदादा भी हाफ पेन्ट

पहनकर जीवंत साधना कर गए! ऐसे मानव की वंदना करना, सन्मान करना, उनके विचारों से परिचित होना इन सबसे हमारे अंदर छः केमिकल्स आते हैं। व्यास भगवान कहते हैं, इससे हम में धैर्य आता है। सिद्धपुरुष के पास बैठने से हम पराजित दशा से विजयी होते हैं। इन लोगों ने मेरे कंधे पर हाथ रखकर कहा है, चिंता क्यों करते हो? हममें धैर्य होना चाहिए। दूसरा, शौर्य प्रगट होना चाहिए। हम कायर हो गए हो तो 'मरा' की जगह 'राम' प्रगट हो जाय। 'मरा' मृतक मंत्र है, 'राम' जीवंत मंत्र है। वाल्मीकि 'मरा' 'मरा' करते-करते 'राम' में परिवर्तित हो गए। हम मर-मर कर जी रहे हैं। बस मर गए! इससे कुछ नहीं होता। मैं तो बिनती करूं। मैं तो साहित्य में और क्या करूं? पर बिनती करूं कि समाज में निराशा उत्पन्न करे ऐसी कविता नहीं आनी चाहिए। समाज को जीवन का बोध प्राप्त होना चाहिए।

कोई कोईनुं नथी रे, कोई कोईनुं नथी रे...

अब छोडो न यार! सब सब के हैं साहब! 'परस्पर देवो भव।' बहनें ऐसे गीत गाती है। 'कोई कोईनुं नथी रे, कोई कोईनुं नथी रे...' ऐसा कैसे चले? 'वसुधैव कुटुम्बकम्।' इसमें 'कोई कोईनुं नथी' कैसे चले? सबको निकट रखने से, पास बैठने से हम में शौर्य प्रगट होता है। जीवन जीने का होंसला बढ़े। शे'र कहता हूं-

किसीसे हार न जीतना जरूरी है।
ये सब खेल है, यहां खेलना जरूरी है।

ऐसे साधकों के पास बैठने से हम में शौर्य प्रगट होता है। तीसरा, आदमी पराक्रमी बनता है। वीर्यवान होता है। हमें लगे कि ये लोग ऐसा करे तो हम क्यों न कर सके? हम भी कर सके। चौथा, भगवान व्यास कहते हैं, मानव के अंदर पड़ी दैवी संपदा धीरे-धीरे प्रगट होती है। हमारे अंदर पड़े दैवीतत्त्व का प्रागट्य होने लगता है। पांचवां, आदमी संवेदनशील होने लगता है। यह बहुत जरूरी है। संवेदना खत्म होती जा रही है। जिस देश ने वेद दिए वह वेदना भूल जायगा तो क्या होगा? तो संवेदना प्रगट हो ऐसे साधनाशील आदमी के पास बैठना चाहिए। पांचवां सूत्र, ऐसे मानव के पास बैठने से, समझदारी के साथ त्याग भावना प्रगट होती है। ऐसे वैसे नहीं। निष्कुलानंद कहते हैं-

त्याग न टके वैराग्य विना...

तो, मानबापा के यज्ञ में विविध मानवता के कार्यों को ध्यान में रखकर, जिन्होंने निरंतर सेवा की। यह मुझे अच्छा लगा। आप सब ने प्रसिद्धि से मुक्त रहकर काम किया है। यह मुझे अच्छा लगा। इन्हें प्रसिद्धि की कोई कामना नहीं। बस, काम होना चाहिए। जब भी उनसे मिलना हो तब कुछ न कुछ नया कर रहे हैं। जिन्हों ने मानवता और समाज को केन्द्र में रखकर विश्वमंगल के विचार किए हैं, चाहे क्षेत्र छोटा हो या बड़ा हो यह महत्त्व का नहीं है। कई बार फंक्शन में जाने की तारीख दे दी हो पर फंक्शन के बारे में जानता नहीं होता फिर बहुत पीछे पड़े और मैं थक जाऊं पर वे न थके तो मैं तारीख दे दूं। फिर कार्यक्रम में पहुंचने पर पता चले कि कौन-सा प्रसंग है! तब मुझे कई लोग कहते हैं, 'बापू, आप पहले से जानकारी लेकर आते हो तो!' मैं कहता हूं-

बदनाम हम को होना था हर हाल में सनम ।
अच्छा हुआ कि नाम तेरे साथ जुड़ गया ।

एक मिनट बापा! मेरे तलगाजरडा का तुलसीपत्र स्वीकार कीजिए। आपके मन में जो थोड़ी पीड़ा है तो अगलीबार पंद्रह का आंकडा पच्चीस में बदल देना। हमारे तलगाजरडा की ओर से इस तुलसीपत्र का स्वीकार कीजिए। मुझे आनंद होगा। थेन्क यू।

(शिशुविहार, भावनगर (गुजरात) में 'नागरिक सन्मान समारोह-२०१६' में प्रस्तुत वक्तव्य: ता.२२-१०-२०१६)

सांध्य-प्रस्तुति

मायाभाई आहीर

लक्ष्मण बारोट

निरंजन पंड्या

भारतीबेन व्यास

दान अलगारी

मोरारदान गढवी

परसोत्तम परी

अभेसिंह राठोड

देवराज गढवी (नानो डेरो)

कीर्तिदान गढवी

हेमंत चौहाण

ओसमाण मीर

॥ जय सीयाराम ॥